देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला—५

गुलबदन बेगम
का
हुमायूँनामा

अनुवादक
व्रजरत्नदास

काशी-नागरीप्रचारिणी सभा
द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण १००० | संवत् १९८० [मूल्य १॥)

वक्तव्य

यद्यपि हुमायूँ बादशाह फ़ारसी, अरबी और तुर्की भाषाओं के पूरे पंडित थे, ज्योतिष और भूगर्भ शास्त्रों में पारंगत थे और फ़ारसी के कवि भी थे, पर फिर भी इन्होंने अपने पिता बाबर बादशाह के समान अपना आत्मचरित्र लिखकर उनका अनुकरण नहीं किया। जिस प्रकार बाबर ने अपने सुख दुःख, हानि लाभ और युद्धादि का चित्र अपनी पुस्तक में खींचकर सर्वसाधारण के सामने रख दिया है, उस प्रकार हुमायूँ नहीं कर सके। यद्यपि पिता पुत्र के जीवन की घटनाओं में पूरा सादृश्य कालचक्र द्वारा प्रेरित होकर आ गया है, पर प्रथम ने अपनी लेखनी द्वारा अपने इतिहास को प्रकाशित किया है और दूसरे ने अपने इतिहास को अंधकार में छोड़ दिया है। परंतु हुमायूँ के सौभाग्य से उस कमी को उसके दो समसामयिकों ने पूर्ण कर दिया। प्रथम इनकी सौतेली बहन गुलबदन बेगम थीं और दूसरा इनका सेवक जौहर आफ़ताबची था।

जौहर ने जो पुस्तक लिखी है वह तज़किर:तुल्-वाक़िआत या वाक़िआते-हुमायूँनी कहलाती है और उसमें हुमायूँ की राजगद्दी से लेकर उसकी मृत्यु तक का वर्णन है। इसने अपने स्वामी की सभी बातों का शुद्ध हृदय से वर्णन किया है

और कुछ भी छिपाने की चेष्टा नहीं की है। परंतु जिस प्रकार सभी पुरुष इतिहासकारों ने मितियों, नामों और घटनाओं पर अधिक ध्यान दिया है, उसी प्रकार इसने भी किया है। इस विषय पर स्त्रियाँ कम लेखनी उठाती हैं, परंतु जब इनका रचित इतिहास देखने में आता है तब उसमें अवश्य यह विचित्रता दिखलाई देती है कि वे स्त्री-संसार की ही घटनाओं का अधिक विवरण देती हैं और पुरुष-संसार की घटनाओं का उल्लेख मात्र कर देती हैं। यही विचित्रता या अधिकता गुलबदन बेगम की पुस्तक हुमायूँनामा में भी है।

जब इस पुस्तक को पढ़िए तब ऐसा ज्ञात होने लगता है कि सहृदय प्राणियों की किसी गृहस्थी में चले आए हैं। बेगम ने अपने पिता का भी कुछ वृत्तांत लिखा है। बदख़्शाँ की लड़ाइयों का, काबुल पर अधिकार करने का और पानीपत तथा कन्हवा की प्रसिद्ध विजयों का उल्लेख मात्र किया गया है; परंतु विवरण दिया है उन भेंटों का जो बाबर ने दिल्ली की लूट से काबुल भेजी थीं और जिस प्रकार वहाँ खुशी मनाई गई थी। हुमायूँ की माँदगी, माता पिता का शोक, उनका अच्छा होना, बाबर की माँदगी और उनकी मृत्यु पर के शोक का पूरा विवरण दिया है क्योंकि वह स्त्रियों की दृष्टि में युद्धादि से अधिक प्रयोजनीय मालूम पड़ता है।

जब हुमायूँ का जीवनचरित्र आरंभ किया है, तब पहले तिलस्मी और हिंदाल के विवाह की मजलिसों का ही वर्णन

दिया है और उनकी तैयारियों का बहुत ही अच्छा वर्णन किया है। पूर्वीय प्रांतों के जयपराजय, चौसा और कन्नौज के युद्धों और अंत में चग़त्ताइयों के लाहौर भागने का उल्लेख भी उन्होंने किया है। जब हुमायूँ सिंध की ओर चले तब से फारस पहुँचने तक में जो कुछ दुःख और कठिनाइयाँ उन्हें भुगतनी पड़ी थीं, उनका बेगम ने पूरा विवरण दे दिया है। हमीदाबानू बेगम ने हुमायूँ बादशाह से विवाह करने में जो कुछ कठिनाइयाँ दिखलाई थीं, उनका पूरा वृत्तांत दिया गया है। पर विवाह का संक्षेप ही में वर्णन दे दिया गया है। फ़ारस में गुलबदन बेगम स्वयं नहीं गई थीं; और वहाँ का जो कुछ वर्णन इन्होंने दिया है वह सब हमीदा बानू बेगम का ही बतलाया हुआ है। इन्होंने बादशाहों के मिलने और स्वागत का संक्षेप में और बातचीत का तथा किस प्रकार हुमायूँ की मानहानि की गई थी, इसका कुछ भी वर्णन नहीं किया है, पर लालों के चोरी जाने और मिलने का पूरा हाल लिखा है।

हुमायूँ के लौटने के साथ बेगम का इतिहास अब फिर से अफ़ग़ानिस्तान में आरंभ होता है। संक्षेप ही में दोनों भाइयों के झगड़ों का वर्णन करते हुए अंत में मिर्ज़ा कामराँ के पकड़े जाने और अंधे किए जाने तक का हाल लिखा गया है। पर इस के अनंतर के पृष्ठों का ही पता नहीं है जिससे कि कहा जा सके कि यह पुस्तक कहाँ पर समाप्त हुई है।

मूल ग्रंथ की जो प्रति अभी तक प्राप्त हुई है, वह विलायत

के बृटिश म्यूज़िअम में सुरक्षित है और उसमें इसके आगे के पृष्ठ नहीं हैं। इस पुस्तक की दूसरी प्रति अभी तक कहीं नहीं मिली है और इससे जान पड़ता है कि इस पुस्तक की अनेक प्रतियाँ नहीं तैयार कराई गई थीं। हो सकता है कि यह पुस्तक बेगम के हाथ की ही लिखी हुई हो। अबुलफ़ज़ल के अकबरनामे में यद्यपि इस पुस्तक के काम में लाए जाने का संकेत है। पर उसने कहीं बेगम की पुस्तक का नाम नहीं दिया है।

कर्नेल हैमिल्टन जब भारत से विलायत गए तब एक सहस्र पुस्तकें जिनको उन्होंने दिल्ली और लखनऊ में संग्रह किया था साथ लेते गए थे। उनकी विधवा ने सन् १८६८ ई० में बृटिश म्यूज़िअम के हाथ चुनी हुई ३५२ पुस्तकें बेच दीं जिनमें यह भी थी। डाक्टर रयू जिन्होंने इन पुस्तकों की सूची बनाई थी इस पुस्तक को सर्वोत्तम पुस्तकों में परिगणित किया है। मिस्टर अर्सकिन और प्रोफ़ेसर ब्लौकमैन ने फ़ारसी पुस्तकों का यद्यपि बहुत मनन किया था, पर उन्हें भी इस पुस्तक का पता नहीं था। अंग्रेज़ी अनुवादिका के लेखानुसार बेगम का हुमायूँनामा उस समय तक पर्द:नशीन ही रहा जब तक डाक्टर रयू ने सूची में उसका नाम नहीं दिया था। उसके अनंतर भी वह उसी हालत में ही पड़ा रहा। मिसेज़ बेवरिज ने उन्नीसवीं शताब्दी के बिलकुल अंत में इस पुस्तक को अपने हाथ में लिया और इसके अनुवाद को टिप्पणी और परिशिष्ट आदि से विभूषित

करके रायल एशाटिक सोसाइटी के ओरिएंटल ट्रांसलेशन फंड की नई माला में छपवाया।

गुलबदन बेगम ने यह इतिहास लिखकर सबसे अधिक आवश्यक कार्य यह पूरा किया है कि अपने वंश के और कई दूसरे सामयिक घरों के संबंधों का परिचय करा दिया है। अंग्रेजी अनुवादिका को इन संबंधों के नाम देने में बड़ी कठिनाई पड़ी है; क्योंकि यूरोप में एक शब्द जितने संबंधों के लिये काम में लाया जाता है, प्रायः उतने के लिये एशिया में लगभग आधे दर्जन पृथक् पृथक् शब्द व्यवहार में लाए जाते हैं। बेगम ने तारीखों और घटनाओं में कहीं कहीं अशुद्धि की है। इनका उल्लेख टिप्पणियों में कर दिया गया है।

यह हिंदी अनुवाद अंग्रेज़ी अनुवाद से बिलकुल स्वतंत्र है और मूल फ़ारसी से अनुवादित है; इसलिए यदि कहीं कुछ विभिन्नता है तो वह मूल के ही कारण हुई है। बहुत से नोट जो आवश्यक नहीं जान पड़े, छोड़ दिए गए हैं और बहुत से नए नोट भी बढ़ाए गए हैं। अंग्रेज़ी अनुवाद में एक बड़ा परिशिष्ट दिया गया है जिसमें बेगमों आदि के छोटे छोटे जीवन-चरित्र दिए गए हैं। परंतु मैंने पाठकों के सुभीते के लिए हिंदी अनुवाद में जहाँ बेगमों के नाम आए हैं, उन्हीं के नीचे फुट नोट में उनका जीवन-चरित्र दे दिया है। ये जीवन-चरित्र मुख्यतया अंग्रेज़ी अनुवादिका के ही श्रम के फल हैं।

ब्रजरत्नदास।

गुलबदन बेगम का जीवनचरित्र

गुलबदन बेगम के पिता प्रसिद्ध ज़हीरुद्दीन मुहम्मद बाबर बादशाह थे जिनकी नसों में मध्य एशिया के दो उच्च वंशों का रक्त बहता था। इनके पिता जगद्विख्यात तैमूरलंग के पुत्र मीरानशाह के वंशधर थे और माता जगद्दाहक चंगेज़ख़ाँ के पुत्र चग़त्ताई के वंश की थीं। इसी कारण मुग़ल सम्राट्गण मीरानशाही और चग़त्ताई कहलाते हैं। बाबर का जन्म १४ फ़रवरी सन् १४८३ ई० को हुआ था और बारह वर्ष की अवस्था में वे फ़र्ग़ान: राज्य की गद्दी पर बैठे। अपने राज्य के रक्षार्थ वे दस वर्ष तक लड़ते भिड़ते रहे; पर अंत में सन् १५०४ ई० में वहाँ से भागकर अफ़ग़ानिस्तान आए और अर्ग़ूनों को वहाँ से निकालकर उन्होंने अपना राज्य स्थापित किया।

इस राज्य की राजधानी काबुल में सन् १५२३ ई० के लगभग गुलबदन बेगम का जन्म हुआ था। इन उन्नीस वर्षों में भारतवर्ष में साम्राज्य स्थापित करने की बाबर की अभिलाषा बराबर बनी रही और बेगम के जन्म के समय यह उसी प्रयत्न में लगे हुए थे। जिस समय बेगम की अवस्था ढाई वर्ष की थी, उसी समय दिल्ली के अफ़ग़ान सुलतान इब्राहीम लोदी को पानीपत के प्रथम युद्ध में परास्त कर के बाबर ने मुग़ल साम्राज्य की नींव डाली थी।

बाबर बादशाह के सात विवाह हुए थे जिनमें प्रथम तीन स्त्रियाँ तैमूरी वंश की थीं और उनका नाम क्रमश: सुलतान बेगम, ज़ैनब सुलतान बेगम और मासूमा सुलतान बेगम था। पहली इन्हें सन् १५०४ ई० के पहले छोड़कर चली गई और अंतिम दोनों की सन् १५०७ ई० के लगभग मृत्यु हो गई। सन् १५०६ ई० में ख़ुरासान में माहम बेगम से विवाह हुआ जिनके पुत्र हुमायूँ बादशाह थे। इसके कुछ वर्ष के अनंतर दिलदार बेगम और गुलरुख़ बेगम से इनका विवाह हुआ था। बाबर का अंतिम विवाह सन् १५१९ ई० में यूसुफ़ज़ई सरदार की पुत्री बीवी मुबारिका से हुआ था और वह निस्संतान रहीं।

गुलबदन बेगम की माता दिलदार बेगम थीं जिनके मातृ-पितृ वंश का कुछ भी वर्णन उनके पति या पुत्री ने अपने अपने ग्रंथों में नहीं दिया है। यद्यपि इससे यह ज्ञात होता है कि वह शाही घराने की नहीं थीं, तो भी बाबर के इन्हें आग़ाच: लिखने से यह प्रकट होता है कि यह अच्छे वंश की अवश्य थीं। इन्हें पाँच संतानें हुईं जिनमें दो पुत्र और तीन पुत्रियाँ थीं। सन् १५१५ ई० में या इसके पहले गुलरंग बेगम का, सन् १५१७ ई० में गुलचेहर: बेगम का, सन १५१९ ई० में अबुन्नासिर मुहम्मद हिंदाल मिर्ज़ा का, सन १५२३ ई० में गुलबदन बेगम का और सन् १५२५ ई० में अंतिम पुत्र का जन्म हुआ था जिसका नाम उसकी बहिन ने आलौर मिर्ज़ा लिखा है और जो आगरे पहुँचने पर सन् १५२९ ई० में मर गया।

सन् १५२५ ई० के नवंबर महीने में जब बाबर काबुल से भारत की ओर चले थे, उस समय गुलबदन बेगम ने डीहे-याकूब में सेना एकत्र होने का दृश्य अवश्य ही देखा होगा, क्योंकि उसने आगे जाकर अपनी पुस्तक में इस प्रकार की घटना का वर्णन किया है। वर्तमान समय में वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण दूरस्थ देशों और नगरों के समाचार बहुत सहज और थोड़े समय में मिल जाते हैं। पर बेगम के समय में उन्हीं समाचारों को प्राप्त करने में जितनी कठिनाइयाँ उठानी पड़ती थीं, उनका विचार करना भी सुलभ नहीं जान पड़ता। अनजान और दूर देश में जिनका उस समय मानचित्र या पुस्तकों के अभाव से कुछ भी पता नहीं मिल सकता था, पुरुषों के चले जाने पर उनके घर की स्त्रियों को महीनों और वर्षों तक समाचार लानेवाले मनुष्यों के रास्ते देखने पड़ते थे।

बाबर काबुल में बहुत थोड़ी सेना छोड़कर गया था और यहाँ की अध्यक्षता नाम मात्र के लिये मिर्ज़ा कामराँ पर छोड़ गया था जिसकी अवस्था उस समय कम थी। हुमायूँ को जो उस समय सत्रह वर्ष का था, और सन् १५२० ई० से बदख्शाँ की सूबेदारी कर रहा था, बाबर ने बुला भेजा था और वह तीन दिसंबर को बाग़ेवफ़ा में अपने पिता से आ मिला। काबुल में देर तक ठहरने के कारण बाबर को उसकी राह देखनी पड़ी थी और उसके आने पर उन्होंने उसपर क्रोध प्रकाश

किया था। पर इस दोष में कुछ अंश माहम बेगम का भी था जिसने अपने पुत्र को बहुत दिनों पर देखा होगा।

बाबर दिसंबर में कई बार बीमार हुआ था जिसका समाचार अवश्य ही काबुल पहुँचा होगा। सन् १५२६ ई० के जनवरी महीने में बाबर ने दुर्ग मिलवात में प्राप्त की हुई कुछ पुस्तकें मिर्ज़ा कामराँ के लिए भेजी थीं और बची हुई हुमायूँ को दी गई थीं। ये पुस्तकें बहुमूल्य और धार्मिक विषयों पर थीं। सोलहवीं शताब्दी की सर्वोत्तम पुस्तकें अभी तक भविष्य के गर्भ में ही छिपी हुई थीं और तुज़ुके-बाबरी अभी बन रही थी।

२६ फरवरी को हुमायूँ ने अपनी प्रथम युद्ध-परीक्षा में सफलता प्राप्त की और हिसार फ़ीरोज़ा पर अधिकार कर लिया जो समाचार उसके माता पिता दोनों को समान ही शुभ मालूम हुआ होगा। यह समाचार शाहाबाद से काबुल भेजा गया था और यहीं पहले पहल हुमायूँ की डाढ़ी बनवाई गई थी। इस के अनंतर १२ अप्रैल को पानीपत का प्रथम युद्ध हुआ जिस ने भारत में मुग़ल साम्राज्य की नींव प्रतिष्ठित कर दी। दिल्ली के मुसलमानों के कोष से जो कुछ प्राप्त हुआ था, बाबर ने उस सब को बाँट दिया जिससे उसे लोग हँसी में क़लंदर कहने लगे। बाबर ने अपने मित्र ख़्वाजः कलाँ के हाथ इस लूट में से काबुल के प्रत्येक संबंधी के लिये उसके उपयुक्त उपहार भेजा था और साथ में एक सूची बनाकर दी थी कि जिसमें किसी को देते समय गड़बड़ न हो। ये उपहार अरब और एराक़ तक

की मसजिदों और वहाँ के रहनेवाले संबंधियों को भेजे गए थे।

गुलबदन बेगम ने अपनी पुस्तक में बेगमों आदि को क्या क्या मिला था, इसका पूरा विवरण दिया है। बाबर बादशाह ने अपने एक पुराने सेवक के लिए एक बहुत बड़ी मोहर जिसके बीच में सिर जाने के लिये छेद बना हुआ था, ढलवाकर भेजी थी और हँसी में उसके नाम के आगे सूची में केवल एक मोहर लिखवाई थी। उस सेवक के एक मोहर सुनकर दुःखित होने और पाने पर प्रसन्न होने आदि का पुस्तक में अच्छा वर्णन दिया गया है। बादशाह के आज्ञानुसार बाग़ में कई दिनों तक नाच रंग हुआ और विजय के लिये परमेश्वर को धन्यवाद दिया गया। गुलबदन बेगम ने अपने उपहार के बारे में कुछ भी नहीं लिखा है जो उसके पिता ने अवश्य ही उसके लिए चुनकर भेजा होगा।

बाबर की जीवित बेगमों में माहम बेगम मुख्य थीं और उन्हें हुमायूँ के अनंतर चार संतानें हुईं, पर एक भी जीवित नहीं रही। इस शोक को कम करने के लिए माहम बेगम ने सन् १५१९ ई० और सन् १५२५ ई० में क्रमशः हिंदाल और गुलबदन बेगम को दिलदार बेगम से लेकर स्वयं उनका लालन पालन किया। सहृदय स्त्री पुरुष दूसरों के बच्चों को लेकर उनका पालन करते हैं; परंतु माहम बेगम ने दूसरों की संतान से अपने पति की ही संतान को अपने वात्सल्य

का पात्र बनाना उत्तम समझा। बाबर और माहम के बीच में हिंदाल के जन्म के पहले यह बात तै हो चुकी थी और जब बाबर बाजौर तथा स्वात विजय करने गया था, उस समय माहम बेगम ने फिर लिखा और साथ ही पूछा था कि दिल्दार बेगम को पुत्र होगा या पुत्री। बाबर ने स्वयं या और किसी से निश्चित करा के लिख भेजा कि पुत्र होगा। इसके जानने की सुगम चाल यह जारी थी कि काग़ज़ के दो टुकड़ों पर किसी एक लड़के और एक लड़की का नाम लिखते थे और दोनों को मोड़कर मिट्टी के बीच में रखकर गोली बना लेते थे। इन दोनों गोलियों को पानी में डाल देते थे और जल के संसर्ग से जब मिट्टी घुलने लगती थी, तब जो नाम पहले खुलता था उसी से भविष्य-वाणी कहते थे। २६ जनवरी को बाबर ने भविष्य-वाणी लिखकर भेजी थी और ४ मार्च को पुत्रोत्पत्ति हुई। इसका नाम अबुन्नासिर मुहम्मद हिंदाल मिर्ज़ा रखा गया।

सन् १५२६ ई० के अगस्त में माहम बेगम को फ़ारूक़ नामक पुत्र हुआ पर छोटी ही अवस्था में वह जाता रहा। उसी वर्ष के दिसंबर महीने में इब्राहीम लोदी की माता बूआ बेगम ने बाबर को विष दे दिया। इस समाचार को बाबर ने उस पत्र के साथ ही भेजा जिसमें उसने अपने बच जाने का वृत्तांत दिया था। बाबर उसका कितना सम्मान करता था और विष दे देने पर उसको जब क़ैद में काबुल भेजा, तब किस प्रकार उसने

आत्म-हत्या कर ली, इन सब घटनाओं का बेगम ने पूरा पूरा वर्णन दिया है।

१६ मार्च सन् १५२७ ई० को कन्हवा युद्ध में बाबर ने विजय प्राप्त की जिसका समाचार काबुल भेजा गया था।

काबुल उस समय बेगमों से भरा हुआ था और वहाँ की अध्यक्षता मिर्ज़ा कामराँ के अधीन होने के कारण उन लोगों में कुछ अशांति फैल गई थी जिसका वृत्तांत ख़्वाजः कलाँ ने एक पत्र में लिखकर और बहुत कुछ दूत द्वारा कहलाकर बाबर पर प्रकट कर दिया। बाबर को यह पत्र ६ फरवरी सन् १५२८ ई० को मिला जिसका उत्तर ११ फरवरी को भेजा गया था। इसीके साथ या कुछ समय अनंतर उसी वर्ष बेगमों को भारत आने की आज्ञा मिल गई। सबसे पहले सन् १५२९ ई० के जनवरी महीने में माहम बेगम गुलबदन बेगम को साथ लेकर जो उस समय छ वर्ष की थी, भारत को रवानः हो गई। गुलबदन बेगम ने इस यात्रा के केवल अंतिम भाग का वर्णन किया है। वह १९ फरवरी को सिंध नदी पर पहुँचीं जिसका समाचार बाबर को ग़ाजीपुर में १ अप्रैल को मिला था। २७ जून को अर्द्ध रात्रि में वे आगरे पहुँचीं जहाँ बाबर ने कुछ दूर पैदल जाकर उनका स्वागत किया और वे पैदल ही महल तक साथ आए।

गुलबदन बेगम दूसरे दिन आगरे पहुँची और वहाँ उसका जैसा स्वागत हुआ, वह उसीकी पुस्तक में पढ़ने योग्य है। बाबर ने चार वर्ष के अनंतर अपनी स्त्रियों और पुत्रियों में से इन्हीं दोनों

को पहले पहल देखा था। गुलबदन बेगम को अपने पिता का बहुत कम ध्यान रहा होगा, क्योंकि दो ही वर्ष की अवस्था में उसने उन्हें देखा रहा होगा। कदाचित् वह पहले डरती भी रही हो, पर मिलने पर उसने अपनी प्रसन्नता को अवर्णनीय लिखा है। अर्द्ध शताब्दी से अधिक समय व्यतीत हो जाने पर बेगम अपनी अशिक्षित लेखनी से उस घटना का ऐसा चित्र खींच सकी हैं जिससे ज्ञात होता है कि उनका मानसिक बल वृद्धावस्था या शांत जीवन के कारण जीर्ण नहीं हुआ था। वह अपने लड़कपन में अवश्य ही चंचल और चपल रही होगी और युवा अवस्था में भी उसे किसी प्रकार का दुःख नहीं उठाना पड़ा था।

इसके अनंतर बाबर ने इन लोगों को धौलपुर और सीकरी ले जाकर अपनी बनवाई हुई इमारतें और बाग़ दिखलाए। इसीके अनंतर बेगम ने अपनी पुस्तक में ख़ानज़ाद: बेगम के साथ दूसरी बेगमों का आना लिखा है; पर बाबर के आत्मचरित्र में माहम बेगम के अनंतर किसी और बेगम के आने का वर्णन नहीं मिलता। इसी वर्ष बाबर के स्वास्थ्य बिगड़ने का समाचार सुनकर हुमायूँ बदख़्शाँ की सूबेदारी दस वर्षीय हिंदाल को सौंपकर बिना आज्ञा पाए आगरे चले आए। इससे बाबर बड़ा क्रुद्ध हुआ, पर अंत में उसने क्षमा करके उसे उसकी जागीर संभल पर भेज दिया।

कुछ ही दिनों बाद हुमायूँ अपनी जागीर संभल में बीमार हो गया और उसके जीवन की आशा बहुत कम रह गई।

तब हुमायूँ की परिक्रमा करके बाबर के प्राण निछावर करने, अपने अधिक अस्वस्थ होने पर अपनी दो पुत्रियों गुलरंग बेगम और गुलचेहर: बेगम का विवाह निश्चित करने, अमीरों और सरदारों के सामने हुमायूँ को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करने, और २६ दिसंबर सन् १५३० ई० को बाबर की मृत्यु तथा बेगमों के शोक आदि का गुलबदन बेगम ने बड़ा हृदयद्रावक वर्णन किया है।

हुमायूँ को जो साम्राज्य भारत में मिला था उसकी जड़ जमी हुई नहीं थी। शस्त्र के बल से उसपर अधिकार था और स्थापित रह सकता था। हुमायूँ के चरित्र-चित्रण और उसके गुणों और दोषों का उसके भाइयों से मिलान करके उसकी योग्यता दिखलाना अधिक आवश्यक है, पर उसके लिए यहाँ स्थान कम है। जो कुछ वृत्तांत यहाँ दिया जाता है उससे कुछ आभास अवश्य मिल जायगा।

हुमायूँ जब गद्दी पर बैठा तब अपने पिता के इच्छानुकूल इसने अपने भाइयों को बड़ी बड़ी जागीरें दीं। कामराँ ने जिसे जागीर में काबुल मिला था, दूसरे ही वर्ष पंजाब पर अधिकार कर लिया। पर हुमायूँ भ्रातृ-प्रेम के कारण चुप रह गए। सन् १५३३ ई० में मिर्ज़ाओं का विद्रोह दमन हुआ और सन् १५३५ ई० में गुजरात विजय हुआ, पर दो वर्ष के अनंतर हाथ से निकल गया। हुमायूँ की दीर्घसूत्रता के कारण बंगाल में शेरशाह सूरी का बल बराबर बढ़ता चला जा रहा था जिससे

सन् १५३६ ई० में उस पर आक्रमण हुआ। इस आक्रमण के आरंभ में हुमायूँ को अच्छी सफलता प्राप्त हुई थी, पर इसका अंत हुमायूँ के साम्राज्य का अंत था। जिस समय हुमायूँ गौड़ में सुख से दिन व्यतीत कर रहा था, उस समय हिंदाल ने कुछ सरदारों की राय से विद्रोह किया और यह समाचार सुनकर जब वह लौटा, तब रास्ते में २७ जून सन् १५३६ ई० को चौसा युद्ध में शेरशाह से पूर्णतया पराजित होकर राजधानी पहुँचा।

इसी युद्ध में जब हुमायूँ गंगाजी पार करते समय डूब रहा था, तब नाज़िम नामक भिश्ती ने उसकी रक्षा की थी। पुरस्कार के रूप में हुमायूँ ने इस भिश्ती को कुछ समय के लिये एक दिन तख़्त पर बिठाया था, जब उसने अपनी मशक के चमड़े के सिक्के चलाए थे। इसी समय गुलबदन बेगम से हुमायूँ ने भेंट की जिसका इस बीच में ख़िज्र ख़्वाज: ख़ाँ के साथ विवाह हो चुका था और जिसकी अवस्था सत्रह वर्ष के लगभग थी। सन् १५३७ ई० में माहम बेगम की मृत्यु हो जाने के कारण गुलबदन बेगम उस समय अपनी माता दिलदार बेगम के साथ रहती थी। माहम बेगम के सामने ही उसका पुत्र अफीमची बन गया था, पर अपनी मृत्यु के कारण अपने वंश की अवनति, दुर्दशा और वहिष्कार देखने से वह बच गई। इसकी मृत्यु के अनंतर हुमायूँ के दुर्भाग्य ने अधिक जोर पकड़ा था; यहाँ तक कि उसके प्रियपात्र भाई हिंदाल ने भी पराजय के समय साथ देने के बदले विद्रोह कर दिया था।

इसके अनंतर जब शेरशाह सूरी ने बंगाल से चढ़ाई की तब हुमायूँ ने आगरे में कामराँ को अपना प्रतिनिधि बनाकर रखा और वह स्वयं युद्ध के लिये ससैन्य कन्नौज की ओर बढ़ा। इधर कामराँ अपने बारह सहस्र सवारों के साथ लाहौर चल दिया और उसके साथ राजधानी से बहुत से स्त्री, पुरुष रक्षा के लिये चले गए। गुलबदन बेगम को भी हुमायूँ का आज्ञापत्र देखकर साथ जाना पड़ा जिससे वह बहुत कष्ट झेलने से बच गई। १७ मई सन् १५४० ई० को कन्नौज का अपूर्व युद्ध हुआ जिसमें हुमायूँ की अगणित सेना दस सहस्र अफग़ानों के सामने से भाग गई। हुमायूँ आगरे होता हुआ लाहौर को चल दिया और दिलदार बेगम आदि स्त्रियाँ मिर्ज़ा हिंदाल की रक्षा में सीकरी होती हुई वहीं पहुँचीं; पर शत्रु के चारों ओर होने से उन्हें बहुत कष्ट उठाना पड़ा था।

अब लाहौर में तैमूरियों का बड़ा जमघट हो गया और भाइयों में तब तक बहुत तर्क वितर्क, राय सलाह होती रही जब तक शेरशाह ब्यास नदी के तट पर नहीं पहुँच गया। तब इन लोगों की नींद खुली और सब ने अपना अपना रास्ता लिया। रावी नदी पार करके हैदर मिर्ज़ा काश्मीर की ओर, हिंदाल और यादगार नासिर मिर्ज़ा मुलतान की ओर, कामराँ और मिर्ज़ा अस्करी काबुल की ओर, और हुमायूँ सिंध की ओर बढ़े। स्त्रियों का अधिकांश भाग मिर्ज़ा कामराँ के साथ काबुल चला गया। गुलबदन बेगम भी मिर्ज़ा के साथ काबुल गई क्योंकि उसने

अपनी पुस्तक में लिखा है कि जब हुमायूँ फारस से लौटकर काबुल आए थे, तब पाँच वर्ष के अनंतर फिर मुझसे भेंट हुई थी।

इन पाँच वर्षों में हुमायूँ का हमीदा बानू बेगम के साथ विवाह करना, राजपूताने के रेगिस्तान की कठोर यात्रा, सिंध के कष्ट, अमरकोट में अकबर का जन्म, फारस की यात्रा और वहाँ की घटनाओं का जो वर्णन हमीदा बानू बेगम से सुनकर लिखा है, वह ऐसी उत्तमता से दिया गया है कि यही जान पड़ता है कि वह भी साथ ही रही होगी। गुलबदन बेगम काबुल में बड़े आराम से रही क्योंकि उसके पुत्रादि सब वहीं थे जिनमें केवल एक का नाम बेगम ने सआदतयार खाँ बतलाया है। यद्यपि खिज्र ख़्वाज: खाँ के कई पुत्र थे, पर उनमें कौन कौन बेगम की संतान थी, सो ज्ञात नहीं। मिर्ज़ा कामराँ शाही बेगमों से बड़ा बुरा व्यवहार करता था, यहाँ तक कि उन्हें उनके महलों से निकाल दिया था और उनके वेतन घटा दिए थे। पर गुलबदन बेगम की वह प्रतिष्ठा करता था और अपने घरवालों की तरह समझता था।

सन् १५४३ ई० में मिर्ज़ा कामराँ ने हिंदाल को गज़नी देने की प्रतिज्ञा करके कंधार पर अधिकार कर लिया और उस पर अस्करी को नियुक्त किया। हिंदाल से कामराँ ने कपट किया और उसे गज़नी न देकर काबुल ले गया।

सन् १५४५ ई० में फारस की सहायक सेना सहित हुमायूँ कंधार पहुँचा जहाँ से अकबर और उसकी बहिन बख्शीबानू बेगम काबुल भेज दिए गए थे। यहीं से हुमायूँ ने बैरामखाँ को काबुल भेजा था जो अकबर, हिंदाल आदि का सुसमाचार लेकर खानज़ादः बेगम के साथ कंधार लौट आया। ३ सितंबर को कंधार विजय हुआ और हुमायूँ ने अस्करी को क्षमा कर दिया। अस्करी ने बिलूची सरदार को जो पत्र लिखे थे, वे उस समय जब कि अस्करी सबके साथ बड़ी प्रसन्नता से बात चीत कर रहे थे, उसके सामने रख दिए गए। हुमायूँ का बदला केवल यही था।

कामराँ ने काबुल में कंधार के पतन, शाही सेना के काबुल की ओर रवानः होने, खानज़ादः बेगम की मृत्यु और मिर्ज़ाओं के भागने का समाचार सब एक साथ ही सुना जिससे वह बहुत घबरा उठा। उसने युद्धार्थ सेना भेजी; पर कुछ युद्ध नहीं हुआ और कामराँ को अंत में ग़ज़नी होते हुए सिंध भागना पड़ा। १५ नवंबर को हुमायूँ ने काबुल पर अधिकार कर लिया। वर्षा ऋतु में हुमायूँ ने बदख्शाँ पर चढ़ाई की और काबुल के सूबेदार मुहम्मद अली मामा को लिख भेजा कि यादगार नासिर को गला घोंटकर मार डालो क्योंकि न्याय होने पर उसे यह दंड मिला है। पर मुहम्मद अली जब यह कार्य्य नहीं कर सका तब दूसरों ने इस काम को पूरा किया।

हुमायूँ किशम में बीमार पड़ गया। यह समाचार

सुनकर कामराँ ने सिंध से आकर काबुल पर अधिकार कर लिया। परंतु हुमायूँ ने वहाँ से लौटते ही कामराँ से काबुल छीन लिया। सन् १५४८ ई० में हुमायूँ ने बदख़्शाँ पर पुनः चढ़ाई की और तालिक़ान विजय किया। कामराँ के क्षमाप्रार्थी होने पर उसे क्षमा कर दिया और बदख़्शाँ में अस्करी की जागीर के पास उसके लिये जागीर नियत कर दी। सन् १५४९ ई० में गुलबदन बेगम और दूसरी बेगमें हुमायूँ की सेना के साथ जो बलख़ को जा रही थी, कोहे दामन तक सैर करने गई और फ़र्ज़ा के झरने को देखती हुई लौट आईं।

हुमायूँ बलख़ विजय करने चले थे पर रास्ते ही से उनके सैनिक भागने लगे। कामराँ जिसे सहायता के लिए बुलाया था, नहीं आया और उज़बेगों ने एकाएक धावा करके बहुतों को मार डाला। इससे निरुत्साह होकर हुमायूँ काबुल लौट आए; पर यहाँ भी कामराँ का कुछ पता नहीं चला। कामराँ इधर उधर जंगलों में घूम रहा था; पर दूसरे वर्ष सन् १५५० ई० में क़िबचाक़ दर्रे में दोनों भाइयों का सामना हो गया और घोर युद्ध के अनंतर हुमायूँ बहुत घायल हो गया। ख़िज़्र ख़्वाजः ख़ाँ और सय्यद बाक़ी तर्मिज़ी हुमायूँ को टट्टू पर बैठाकर और दोनों ओर से थामकर युद्धस्थल के बाहर लिवा ले गए। कामराँ का काबुल पर फिर अधिकार हो गया और तीन महीने तक वहाँ हुमायूँ की मृत्यु का समाचार फैला रहा। इसी के अनंतर बदख़्शी सेना की सहायता से हुमायूँ ने कामराँ

के मुख्य सेनापति क़राच: ख़ाँ को उश्तुर ग्राम में पूरी तरह से परास्त किया जहाँ अकबर पिता से आकर मिला।

अब कामराँ की कहानी समाप्त होने पर आ गई। २० नवंबर सन् १५५१ ई० को कामराँ के रात्रि-आक्रमण में वीरतापूर्वक लड़ते हुए हिंदाल मारा गया जिसकी मृत्यु से गुलबदन बेगम को बड़ा शोक हुआ क्योंकि वही एक उनका सहोदर भाई था। हिंदाल की केवल एक पुत्री रुक़िया बेगम थी जिसका अकबर से विवाह हुआ था।

कामराँ यहाँ से भागकर भारत में सलीम शाह सूरी की शरण में गया, पर वहाँ से अपमानित होने पर भागा। रास्ते में भागते समय आदम ख़ाँ गक्खर ने इसे पकड़ लिया और हुमायूँ के पास भेज दिया। १७ अगस्त सन् १५५३ ई० को हुमायूँ के आज्ञानुसार कामराँ अंधा किया जाकर मक्का भेज दिया गया। दो वर्ष पहले अस्करी को बदख़्शाँ से मक्का जाने की आज्ञा मिल चुकी थी और वह उधर ही सन् १५५८ ई० में दमिश्क़ नगर में मर गया। इसके एक वर्ष पहले ही कामराँ की मृत्यु ५ अक्तूबर सन् १५५७ ई० को हो गई थी।

भाइयों से छुटकारा मिल जाने पर हुमायूँ सन् १५५४ ई० के १५ नवंबर को काबुल से रवान: हुए। काबुल नदी से नाव पर सवार होकर अकबर के साथ पेशावर पहुँचे और पंजाब विजय कर २३ जूलाई सन् १५५५ ई० को दिल्ली के तख़्त पर बैठे। ख़िज़्र ख़्वाज: ख़ाँ भी साथ ही भारत आया था। तुर्की के

सुलतान सुलेमान के एडमिरल सीदी अली रईस को युद्धादि के कारण कुछ अफ़सरों और ५० मल्लाहों के साथ सूरत से लाहौर और वहाँ से स्थल मार्ग से तुर्की जाना पड़ा था। भारतीय मुसलमानों ने इसकी बड़ी प्रतिष्ठा की और शाह हुसेन अर्गून ने इसे अपने यहाँ रखना चाहा, पर इसने नहीं माना। लाहौर में यह रोका गया क्योंकि शाही आज्ञा के पहुँचने के पहले वहाँ का सूबेदार उन्हें नहीं जाने दे सकता था। हुमायूँ ने नए समाचार सुनने की इच्छा से एडमिरल को दिल्ली बुला भेजा और उसका अच्छा स्वागत किया।

हुमायूँ ने उसे स्थायी रूप से अपने यहाँ रखना चाहा; पर वैसा न हो सकने पर उसे कुछ दिन के लिये ठहराया कि वह जो एक अच्छा ज्योतिषी था, सूर्य्य और चंद्र ग्रहणों का ठीक समय निकालने, सूर्य्य के रास्ते आदि बतलाने में उसके दरबार के ज्योतिषियों की सहायता करे। यह चग़त्ताई-तुर्की भाषा का एक अच्छा कवि था और पठन पाठन ही में अधिक समय व्यतीत करता था। अधिक ठहरने से घबराकर उसने दो ग़ज़लों में छुट्टी की प्रार्थना की और हुमायूँ ने आज्ञा दे दी। पर वह जाने की तैयारी में था कि शेरशाह के बनवाए हुए शेरमंडल की सीढ़ी पर से गिरकर हुमायूँ की मृत्यु हो गई। २४ जनवरी सन् १५५६ ई० को शुक्रवार के दिन उदय होते हुए शुक्र को देखकर यह सीढ़ी से उतर रहे थे कि मुअज्ज़िन ने अज़ाँ पुकारी और सीदी अली के कथनानुसार जैसा कि इनका स्वभाव था, यह

घुटनों के बल झुके और लड़खड़ाकर गिर पड़े। तीन दिन के अनंतर २७ जनवरी को मृत्यु हुई।

सीदी अली रईस की सम्मति से इस घटना को तब तक छिपाए रहे जब तक लाहौर में बैराम ख़ाँ ख़ानख़ानाँ ने अकबर को राजगद्दी पर बैठाकर ख़ुतबा नहीं पढ़वा दिया था। कलानौर में अकबर से भेंट कर सीदी अली अपने देश को चला गया। बैराम ख़ाँ ख़ानख़ानाँ के हाथ में कुल प्रबंध आया। इसी वर्ष अकबर ने मुहम्मद कुली ख़ाँ बर्लास, अतगा ख़ाँ और ख़िज़्र ख़्वाज: ख़ाँ को थोड़ी सेना के साथ अपनी माता और बेगमों को लिवा लाने के लिए भेजा। ये बेगमें झट रवान: होकर सन १५५७ ई० के आरंभ में पश्चिमीय सिवालिक पहाड़ी के पास मानकोट पहुँचकर अकबर से मिलीं। हमीदा बानू बेगम के साथ गुलबदन बेगम, गुलचेहर: बेगम, हाजी बेगम और सलीमा सुलतान बेगम भी थीं।

यहाँ से बेगमें लाहौर गईं और वहाँ से ७ दिस० १५५७ ई० को दिल्ली के लिये रवान: हुईं। जालंधर में सब लोग ठहरे जहाँ बैराम ख़ाँ ख़ानख़ानाँ का विवाह बाबर की नतनी सलीमा सुलतान बेगम से हुआ जिसकी अवस्था उस समय बहुत थोड़ी थी। इस संबंध को हुमायूँ ने ही स्थिर किया था और मृत्यु हो जाने के कारण उसके इच्छानुसार यह काम पूरा किया गया था। बैराम ख़ाँ को उसके कार्यों और योग्यता

के पुरस्कार में शाही घराने की लड़की ब्याही गई थी। यद्यपि सलीमा बेगम अवस्था में छोटी थी, पर वह योग्य और शिक्षिता थी। कवि भी थी और कविता में अपना उपनाम मख़फ़ी (छिपा हुआ) रखती थी।

हेमूँ बक्काल के दिल्ली और आगरा विजय कर लेने पर जब अकबर उस ओर जाने लगे, तब सन् १५५६ ई० के आरंभ में खिज्र ख़्वाजः ख़ाँ को लाहौर में सूबेदार बनाकर छोड़ गए थे। सिकंदर शाह सूरी जिसकी देख भाल के लिये यह सेना सहित नियुक्त किए गए थे, यह अवसर पाकर मान-कोट से निकला। यह कोई अच्छा सेनानी नहीं था और इसीसे युद्ध में परास्त होकर लाहौर लौट आया जिसे सिकंदर ने आकर घेर लिया। अकबर ने लौटकर पंजाब में शांति स्थापित की। इसके अनंतर यह किसी अच्छे पद पर नहीं नियुक्त किया गया। अकबर का फूफा होने के कारण यह आराम से दरबार में रहा करता था। एक बार इसने अकबर को घोड़े भेंट किए थे और सन् १५६३ ई० में जब अकबर दिल्ली में घायल हुआ था, तब उसने उसकी सेवा की थी। इसकी मृत्यु कब और कैसे हुई सो ज्ञात नहीं। यह पाँचहजारी मंसबदार और अमी-रुल्-उमरा बनाया गया था।

गुलबदन बेगम का वर्णन किसी इतिहास में भारत आने के बाद से सन् १५७४ ई० तक जब वह हज्ज को गई थीं, नहीं मिलता। इस बीच में कई ऐसी घटनाएँ हुई हैं जिनसे इन बेगमों

में बहुत कुछ तर्क और बातचीत होती रही होगी। पहली घटना बैराम ख़ाँ का पतन ही है। हमीदा बानू बेगम इस षड्यंत्र को अवश्य ही जानती थीं क्योंकि उन्हीं से मिलने के बहाने अकबर दिल्ली गए थे। यद्यपि वह यह जानती थीं कि बैराम खाँ ने उसके पति की कैसी सेवा की थी; पर इस कार्य में भी उसकी कम से कम मौखिक सम्मति अवश्य थी।

इसी के अनंतर माहम अनगा के पुत्र अदहम ख़ाँ ने शम्शुद्दीन अतगा ख़ाँ को जब वह अपने दफ़्तर में बैठा था, १६ मई सन् १५६२ ई० की रात्रि को मार डाला और स्वयं हरम के द्वार पर जा खड़ा हुआ। अकबर के निकलने पर उससे अपने दोष के लिये तर्क करने लगा जिसपर बादशाह ने घूँसा मारकर उसे गिरा दिया। शाही आज्ञानुसार वह दीवार से नीचे फेंका जाकर मार डाला गया जिसके चालीसा को उसकी माता माहम भी मर गई।

कुछ वर्षों के लिये हुमायूँ की अंतिम स्त्री और मुहम्मद हकीम की माता माहचूचक बेगम की चालों और कार्य्यों ने हरम में बातचीत के लिये नया विषय पैदा कर दिया था। सन् १५६१ ई० में इसने काबुल के सूबेदार मुनइम ख़ाँ के पुत्र ग़नी को जिसे वह वहाँ छोड़कर राजधानी आया था, काबुल से निकाल दिया। मुनइम ख़ाँ कुछ सेना सहित भेजा गया पर माहचूचक बेगम ने जलालाबाद में उसे परास्त कर बिदा कर दिया। तीन आदमियों को उसने प्रबंधकर्ता बनाया; पर

दो उसकी आज्ञा से मारे गए और तीसरे हैदर क़ासिम कोहबर से स्वयं विवाह कर लिया। इसके अनंतर शाह अबुलूमआली पहुँचा जिससे अपनी पुत्री फ़ख़ुन्निसा का विवाह कर दिया। कुछ ही दिनों में इसने माहचूचक बेगम और हैदर क़ासिम को मार डाला जिससे काबुल में विद्रोह मच गया। हकीम के बुलाने पर मिर्ज़ा सुलेमान ने चढ़ाई कर अबुलूमआली को मरवा डाला और काबुल में शांति स्थापित कर और अपनी एक पुत्री से हकीम का विवाह कर लौट गया।

हमीदा बानू बेगम का भाई ख्वाज: मुअज्ज़म जो झक्की था, अंत में कुछ पागल हो गया और उसने अपनी स्त्री ज़ुहरा को मार डालने के लिये धमकाया। उसकी माता बीबी फ़ातिमा ने अकबर से जाकर सब वृत्तांत कहा और न्याय चाहा। अकबर ख्वाज: मुअज्ज़म से कहलाकर कि मैं तुम्हारे घर पर आता हूँ, साथ ही पहुँचे। पर उसने ज़ुहरा को मारकर छुरा शाही नौकरों के बीच में फेंक दिया। बादशाह ने उसे नदी में फेंकवा दिया; पर जब वह नहीं डूबा तब ग्वालियर दुर्ग में उसे कैद किया जहाँ उसकी मृत्यु हुई।

गुलबदन बेगम का यह जीवन अकबर की छत्रच्छाया में बड़े सुख और शांति के साथ व्यतीत हुआ था। माता और स्त्री के कामों, पठन पाठन और कविता में समय बिताती थीं और भारतीय नई चाल और व्यवहार का भी परिशीलन करती रही होंगी। अकबर के साथ यह उर्दू अर्थात् कंप में भी रहती

थीं क्योंकि कंप के वर्णन में इनके खेमे का स्थान हमीदा बानू बेगम के पास ही लिखा गया है।

यद्यपि गुलबदन बेगम की इच्छा बहुत दिनों से हज्ज करने की थी पर अकबर नहीं जाने देते थे। अंत में सन् १५७५ ई० में जाना ठीक हुआ। वंश के कारण यात्रियों में गुलबदन बेगम मुख्य थीं। इसके अनंतर सलीमा सुलतान बेगम का नाम है जो अकबर की स्त्री थीं। यद्यपि सौभाग्यवती स्त्री के लिये हज्ज करने की चाल नहीं थी, पर मुसलमानी धर्म में यह नियम है कि यदि इच्छा प्रबल हो तो कर सकती हैं। अस्करी की स्त्री सुलतानम बेगम, कामराँ की दो पुत्रियाँ हाजी बेगम और गुल-एज़ार बेगम, गुलबदन बेगम की पौत्री उम्मु कुलसुम और सलीमा ख़ानम भी साथ गई थीं। इनके सिवा और भी बहुत स्त्रियाँ साथ गई थीं जिनमें गुलनार आग़ाच:, बीबी सर्वेक़द जो मुनइम ख़ाँ ख़ानख़ानाँ की विधवा स्त्री थी, बीबी सफ़ीया और शाहम आग़ा के नाम उल्लेखनीय हैं।

१५ अक्तूबर सन् १५७५ ई० (शाबान ९८२ हि०) को फ़तहपुर सीकरी से यह कारवाँ चला। यह कारवाँ मुहम्मद बाक़ीख़ाँ कोका और रूमीख़ाँ आदि सरदारों के अधीन था। सुलतान सलीम एक मंज़िल तक साथ गए और चतुर्वर्षीय मुराद को सूरत तक जाने की आज्ञा थी; पर गुलबदन बेगम के कहने से वह इतनी दूर जाने से बच गया। रास्ते में बहुत कुछ कठिनाइयाँ उठानी पड़ी थीं क्योंकि साम्राज्य में अभी तक पूरी

शांति स्थापित नहीं हो सकी थी। राजपूताना और गुजरात होते हुए अंत में ये लोग सूरत पहुँचे जहाँ कुलीजखाँ अंदोजानी सूबेदार था। अरब समुद्र में पुर्तगालवालों का प्राधान्य था और इससे उनका पास अर्थात् जाने का आज्ञापत्र लेना आवश्यक था। बेगमें तुर्की जहाज़ 'सलीम' पर जिसे किराए पर लिया गया था, सवार हुईं और शाही जहाज़ 'इलाही' पर अन्य यात्री सवार हुए। इसी दूसरे जहाज़ को रोका गया था क्योंकि पहला किराए का होने से बिना पास के जा आ सकता था। अंत में पास मिल जाने पर १७ अक्तूबर सन् १५७६ ई० को जहाज़ सूरत से आगे बढ़े।

बेगमें अरब में लगभग साढ़े तीन वर्ष के रहीं और चारों स्थानों की घूम घूमकर यात्रा की। सन् १५७९ ई० में ख़्वाजः यहिया मीर हज्ज हुआ जो अब्दुल्-क़ादिर बदायूनी का मित्र और भला आदमी था। यह बेगमों को लिवा लाने और अरब के तोहफे लाने के लिये भेजा गया था। लौटते समय अदन के पास जहाज़ टूट गया था जिससे लगभग एक वर्ष तक इन लोगों को उस जंगली देश में रहना पड़ा था। वहाँ के सूबेदार ने इन लोगों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया था जिसके लिए तुर्की सुलतान मुराद ने उसे दंड दिया। सन् १५८० ई० के अप्रैल में एक दिन इन्हें दक्षिण से एक जहाज़ आता दिखलाई दिया। पता लगाने के लिए एक नाव पर कुछ आदमी भेजे गए। उस पर बायज़ीद बिआत, उसकी स्त्री और बच्चे आदि थे।

इस के द्वारा समाचार पहुँचने पर दूसरे जहाज़ का प्रबंध हुआ जिससे ये सन् १५८२ ई० में सूरत पहुँचीं और वहाँ कुछ दिन ठहरकर फतहपुर सीकरी गईं।

अजमेर में चिश्तियों के मक़बरों का दर्शन किया और यहीं सलीम से भेंट हुई। कन्हवा में बादशाह से भी भेंट हुई। बेगम की मित्र बेगा बेगम इन लोगों के पहुँचने के पहले ही मर चुकी थीं।

बेगम ने हुमायूँनामा के अतिरिक्त कुछ कविता भी लिखी थीं जिसमें के एक शेर को मीर महदी शीराजी ने अपनी पुस्तक तज़किर:तुलख़वातीन में रखा है। उसका अर्थ यह है कि जो नायिका अपने प्रेमी से प्रेम नहीं रखती है, ठीक जानो कि उसकी अवस्था में लड़कपन के सिवा और कुछ नहीं है।

बेगम को पुस्तकों के संग्रह करने का शौक़ था। बायज़ीद के हुमायूँनामा की नौ प्रतियाँ तैयार की गई थीं जिनमें से दो शाही पुस्तकालय, एक एक प्रति सलीम, मुराद और दानियाल, एक गुलबदन बेगम, दो अबुलफ़ज़ल और एक ग्रंथकर्त्ता को मिली। सत्तर वर्ष की अवस्था में इनका नाती मुहम्मद-यार दरबार से निकाला गया था। जब सलीम ने विद्रोह किया था, तब इन्होंने सलीमा के साथ अकबर से उसके लिये क्षमा माँगी थी। हमीदा बानू बेगम के साथ इन्हें भी शाही भेंट मिली थी।

अस्सी वर्ष की अवस्था में सन १६०३ ई० के फरवरी

में कुछ ज्वर आने के अनंतर इनकी मृत्यु हुई। अंत समय तक हमीदा बेगम साथ रही। आँख बंद किए जब वह पड़ी थीं तब हमीदा ने पुकारा "जीउ"। कुछ देर पर आँखें खोलकर बेगम ने कहा कि मैं तो जाती हूँ, तुम जीओ। अकबर ने जनाज़: उठाया था और यदि इसके पुत्र आदि नहीं होते तो वह स्वयं सब कृत्य करते।

इस प्रकार एक योग्य, भली और स्नेहमयी स्त्री के जीवन का अंत हो गया। परंतु अपने ग्रंथ के कारण वह अन्य धर्मावलंबी होने और कई शताब्दी बीत जाने पर भी हम लोगों की मित्र और जीवित के समान है।

———
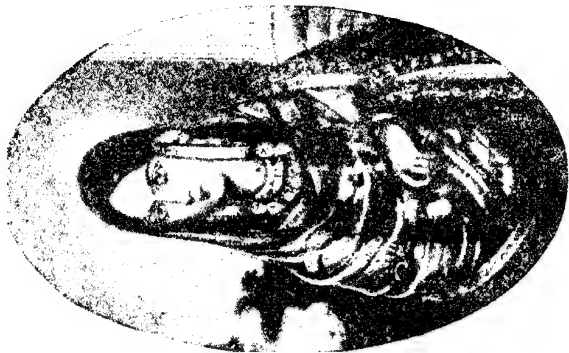
हुमायूँ बादशाह

हमीदा बानू बेगम
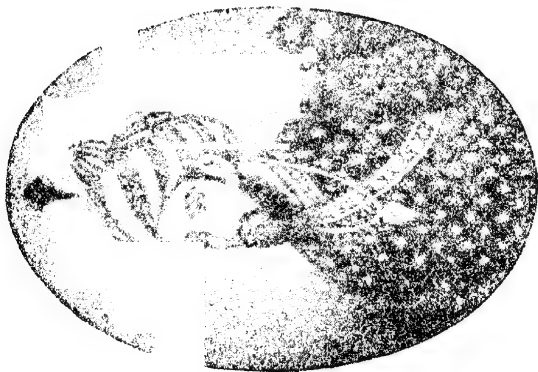
हुमायूँनामा

दयालु और कृपालु परमेश्वर के नाम के सहित।

आज्ञा[1] हुई थी कि जो कुछ वृत्तांत फ़िर्दौस-मकानी (बाबर) और जन्नतआशियानी[2] (हुमायूँ) का ज्ञात हो लिखो। जिस समय फ़िर्दौस-मकानी इस नश्वर संसार से स्वर्ग को गए यह तुच्छ जीव आठ वर्ष का था और इसीसे थोड़ा वृत्तांत याद था। बादशाही आज्ञानुसार जो कुछ सुना था और याद था लिखा जाता है।

पहले इस ग्रंथ को पवित्र और शुद्ध करने के लिये

---

(१) अकबरनामा ग्रंथ लिखे जाने के समय उसके लिए इतिहास की सामग्री बटोरने को यह आज्ञा हुई होगी। यदि ऐसा हो तब सन् १५८७ ई० (९९५ हि०) के अनंतर यह पुस्तक लिखी गई होगी।

(२) 'स्वर्ग में मकान है जिसका' और 'स्वर्ग में घोंसला है जिसका' अर्थात् स्वर्ग के रहनेवाले। मृत्यु के अनंतर इस प्रकार के नाम रखने की प्रथा मुसलमान शाही घरानों में प्रचलित थी। स्त्री और पुरुष दोनों के ही नाम रखे जाते थे। केवल मृत का नाम प्रतिष्ठापूर्वक लिए जाने के लिए ऐसा किया जाता था।

सम्राट् पिता का वृत्तांत लिखा जाता है, यद्यपि वह उनके आत्मचरित्र[1] में वर्णित है।

साहिब-क़िरानी[2] के समय से फ़िर्दौस-मकानी के समय तक के भूतपूर्व राजाओं में से किसी ने इनके समान परिश्रम न उठाया होगा। बारह[3] वर्ष की अवस्था में ये बादशाह हुए और ५ रमज़ान सन् ९०९ हि०[4] को अंदजान नगर में जो फ़र्ग़ाना प्रांत की राजधानी है ख़ुतबा[5] पढ़ा गया। पूरे ग्यारह वर्ष तक इन्होंने मावरुन्नहर प्रांत में चग़त्ताई, तैमूरी और उज़बेग बादशाहों[6] के साथ इतने युद्ध किए और संकट झेले कि लेखनी की जिह्वा उनके वर्णन में अयोग्य और असमर्थ है। राज्य करने में जितना परिश्रम और कष्ट इन्होंने उठाया था उतना कम मनुष्यों ने उठाया होगा और जितनी वीरता, पुरुषार्थ और

---

(१) बाबर ने अपना आत्मचरित्र तुर्की भाषा में लिखा है। इसका अनुवाद फ़ारसी में अब्दुर्रहीम ख़ां ख़ानख़ाना ने किया है। लीडन और अर्सकिन ने अंग्रेज़ी में इसका अनुवाद किया है।

(२) तैमूरलंग का नाम जो उसकी मृत्यु के अनंतर रखा गया था।

(३) बाबर का जन्म ६ मुहर्रम ८८८ हि० (१४ फ़रवरी १४८३) को हुआ था और ८९९ हि० में वह फ़र्ग़ाने का बादशाह हुआ।

(४) ९०९ हि० में दस वर्ष की अशुद्धि है। ८९९ हि० होना चाहिए।

(५) मसजिदों में वर्तमान बादशाहों का नाम दुआ के समय लिया जाता है जिसे ख़ुतबा कहते हैं।

(६) प्रथम दोनों तो बाबर के संबंधी ही थे, जो चाचा और मामा लगते थे। तीसरा शैबानी ख़ाँ के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध है।

धैर्य्य इन्होंने युद्धों और कष्टों में दिखलाया था उतना कम बादशाहों के बारे में लिखा गया है। दो बार तलवार के बल से इन्होंने समरक़ंद विजय किया। पहली बार मेरे पिता बारह वर्ष के थे, दूसरी बार उन्नीस वर्ष के थे और तीसरी बार बाईस वर्ष के थे[१]। वे छ महीने घिरे रहे थे[२] और इनके चाचा सुल्तान हुसेन मिर्ज़ा बैक़रा ने, जो ख़ुरासान में थे, इनके पास सहायता नहीं भेजी। सुलतान महमूदख़ाँ ने भी, जो काशग़र में थे और इनके मामा थे, सहायता नहीं भेजी। जब कहीं से सहायता नहीं पहुँची तब वे निराश हुए[३]।

ऐसे समय में शाहीबेग ख़ाँ[४] ने कहला भेजा कि यदि तुम अपनी बहिन ख़ानज़ाद: बेगम के साथ मेरा विवाह कर दो तो

---

(१) बाबर ने तीन बार समरक़ंद पर अधिकार किया। सन् १४९७ ई० और सन् १५०० ई० में १५ और १७ वर्ष की अवस्था में उसे विजय किया, फिर सन् १५११ ई० में २९ वर्ष की अवस्था में बिना युद्ध ही उसपर अधिकार जमाया। यहाँ जो उमर दी है वह ठीक नहीं है।

(२) सन् १५०० ई० में जब शैबानीख़ाँ ने समरक़ंद घेरा था।

(३) इस समय अठारह वर्ष की अवस्था हो गई थी।

(४) इसका पूरा नाम अबुलफ़तह मुहम्मद शाहबख़्त ख़ाँ था पर इसके शैबानीख़ाँ और शाहबेग ख़ाँ उज़बेग नाम ही इतिहास में अधिक प्रसिद्ध हैं।

(५) ख़ानज़ाद: बेगम—उमर शेख़ मिर्ज़ा और क़ुतलक़-निगार ख़ानम की पुत्री और बाबर की बड़ी सहोदर बहिन थी। इसका जन्म सन् १४७८ ई० में हुआ था। सन् १५०१ ई० में शैबानीख़ाँ से इसका विवाह हुआ जब उसने समरकंद विजय किया और यह विवाह उस संधि

हमारे और तुम्हारे मध्य में संधि हो और मित्रता सदा के लिये हो जाय। अंत में आवश्यकता होने से खानज़ाद: बेगम का ख़ाँ से विवाह करके वे स्वयं बाहर[1] निकले।

साथ में दो सौ पैदल मनुष्य थे जिनके कंधों पर कुरते, पाँवों में जूते और हाथों में लाठियाँ थीं। ऐसी बेसामानी के साथ ईश्वर पर भरोसा कर बादशाह बदख़्शाँ प्रांत और काबुल की ओर चले।

कुंदज़ और बदख़्शाँ प्रांत में ख़ुसरू शाह[2] की सेना और मनुष्य थे। उसने आकर मेरे सम्राट् पिता की अधीनता स्वीकार की। यद्यपि इसने कई बुरे कर्म किए थे, जैसे बायसंग़र मिर्ज़ा को मार डाला था और सुलतान मसऊद मिर्ज़ा को अंधा कर दिया

का एक नियम बना जिससे बाबर की प्राणरक्षा हुई। इस विवाह से ख़ुर्रमशाह पुत्र हुआ जो युवा अवस्था ही में मर गया। शैबानीख़ाँ ने बेगम को भाई का ही पक्ष लेते देख तिलाक़ दे दिया और सैयद हादा से विवाह कर दिया, जो सन् १५१० ई० में मर्व के युद्ध में शैबानीख़ाँ के साथ मारा गया। सन् १५११ ई० में शाह इस्माइल ने इसे बाबर के पास भेज दिया। इसके अनंतर या सन् १५०१ ई० के पहले जब वह तेईस वर्ष की थी इसका विवाह महदी मुहम्मद ख़्वाजा के साथ हुआ होगा। महदी के बारे में बाबर ने भी कुछ नहीं लिखा है। गुलबदन ने ख़ानज़ाद: बेगम को बहुधा 'आक: जानम' नाम से लिखा है। यह सन् १५४५ ई० में क़ब्लचाक़ में बहुत दुःख उठा कर मरी।

(१) समरकंद से सन् १५०१ ई० के जुलाई महीने में।

(२) सुलतान महमूद ख़ाँ का यह मुख्य सर्दार था और जाति का क़िप-चाक़ तुर्क था। सन् १५०५ ई० में शैबानी ख़ाँ के उज़बेगों ने उसे मार डाला।

था जो दोनों मेरे पिता के ममेरे भाई थे और जब आवश्यकता पड़ने से बादशाह चढ़ाइयों के समय उसके प्रांत में होकर जा रहे थे तब उसने पता लगाकर इन्हें अपने देश से कठोरता के साथ बाहर निकाल दिया था, तिसपर भी बादशाह ने, जो वीरता, शौर्य और दया से पूर्ण थे, उससे बदला लेने का विचार न करके कहा कि जवाहिर और सोने के बरतनों में से जितनी इच्छा हो लेजाओ[1]। पाँच छ ऊँट और पांच छ खच्चर बोझ साथ लेकर वह बिदा हुआ और आराम से ख़ुरासान गया। बादशाह काबुल को चले।

उस समय काबुल का अध्यक्ष मुहम्मद मुक़ीम था जो ज़ुलनून अर्ग़ून का पुत्र और नाहीद बेगम[2] का नाना था।

---

(१) सन् १५०४ ई० में बाबर ने इस प्रांत में सेना बटोरी, तब रक्षा पाने का वचन देने पर ख़ुसरू शरण आया था। अर्सकिन लिखते हैं कि उसकी भेंट को बाबर ने ज्यों का त्यों लौटा दिया था।

(२) नाहीद बेगम—ज़ुलनून अर्ग़ून के पुत्र मुहम्मद मुक़ीम की पुत्री माहचूचक बेगम की, जो बाबर की क़ैद में थी और जिसका विवाह उसने अपने धायभाई क़ासिम से कर दिया था, पुत्री नाहीद बेगम थी। यह मुहिब्ब अली बर्लास की स्त्री थी। यह जिस समय अठारह महीने की थी उसी समय उसकी माता उसे काबुल में छोड़कर छोटे आदमी के साथ ज़बरदस्ती विवाह कर देने से बुरा मानकर भाग गई। जब इसकी माँ को सिंध में मुहम्मद बाक़ी तुर्ख़ान ने क़ैद किया तब वह भागकर भक्कर गई जहाँ सन् ९७५ हि० तक सुलतान महमूद भक्करी की रक्षा में रही, फिर अकबर के दरबार में पहुँची। यह हिंदाल की मजलिस में भी थी।

उलुग़ बेग मिर्ज़ा[1] की मृत्यु के उपरांत उसने काबुल अब्दुर्रज़्ज़ाक़ मिर्ज़ा से जो बादशाह का चचेरा भाई था छीन लिया था।

बादशाह अच्छी तरह काबुल पहुँच गए। मुहम्मद मुक़ीम दो तीन दिन दुर्ग में ठहरा रहा और कुछ दिन के अनंतर प्रण और प्रतिज्ञा करके और काबुल बादशाही नौकरों को सौंप कर स्वयं सामान आदि सहित पिता के पास क़ंधार चला गया। यह घटना सन ९१० हि०[2] के रबीउस्सानी के अंत में हुई थी। काबुल के अमीर होने पर बादशाह बंगिश गए और एक बार ही अधिकार करके काबुल लौट आए।

बादशाह की माता ख़ानम[3] को छ दिन तक ज्वर आता रहा। वे इस नश्वर संसार से अमरलोक चली गईं। लोगों ने उन्हें नौरोज़ बाग़ में गाड़ा और बादशाह ने उस बाग़ के स्वामियों को जो उसके संबंधी थे एक सहस्र सिक्का मिसक़ाली दिया।

इसी समय सुलतान हुसेन मिर्ज़ा के आवश्यक पत्र आए कि हम उज़बेगों से युद्ध करने का विचार रखते हैं, यदि तुम

(१) मिर्ज़ा अबू सैयद का पुत्र था जो सन् १५०२ ई० में मर गया।

(२) अक्तूबर सन् १५०४ ई० में जब तेईस वर्ष की अवस्था थी।

(३) क़ुतलक़ निगार ख़ानम—यह यूनास ख़ाँ चग़त्ताई और ईसान-दौलात् क़ूचीं की द्वितीय पुत्री थी और उमर शेख़ मिर्ज़ा मीरानशाही की मुख्य पत्नी थी, महमूदख़ाँ और अहमदख़ाँ की सौतेली बहिन और ख़ानज़ादः और बाबर की माता थी। युद्ध आदि पर इसने पुत्र का बराबर साथ दिया और उसके काबुल का स्वामी होने के पीछे वह सन १५०५ ई० के जून में मरी।

भी आओ तो बहुत अच्छा हो। बादशाह ने ईश्वर से अनुमति माँगी। अंत मे वे उनसे मिलने चले। रास्ते में उन्हें समाचार मिला कि मिर्ज़ा मर गए, शाही अमीरों ने प्रार्थना की कि मिर्ज़ा की मृत्यु हो गई इससे यही ठीक है कि अब काबुल लौट चलना चाहिए परंतु बादशाह ने कहा कि जब इतनी दूर आ चुके तब शाहज़ादों के यहाँ शोक मनाने के लिए जाना चाहिए। अंत में वे ख़ुरासान को चले।

जब मिर्ज़ाओं[1] ने बादशाह का आना सुना, तब वे सब स्वागत को चले, पर बदीउज्ज़माँ मिर्ज़ा को छोड़ गए, क्योंकि सुलतान हुसेन मिर्ज़ा के अमीर बरंतूक़ बेग और ज़ुलनून बेग ने यह कहा कि बादशाह बदीउज्ज़माँ से पंदरह वर्ष छोटे हैं इससे यह ठीक है कि बादशाह घुटनों बल झुककर मिलें। उस समय क़ासिम बेग[2] ने कहा कि वे अवस्था में छोटे हैं परंतु तोरः[3] से बड़े हैं क्योंकि कई बार समरक़ंद तलवार के बल से विजय कर चुके हैं। अंत में यह निश्चित हुआ कि एक बार झुककर बादशाह मिलें और बदीउज्ज़माँ मिर्ज़ा बादशाह की प्रतिष्ठा के लिये आगे बढ़कर मिलें। इसी समय बादशाह

---

(१) बदीउज्ज़माँ मिर्ज़ा और मुहम्मद मुज़फ़्फ़र मिर्ज़ा दोनों सुलतान हुसेन मिर्ज़ा के पुत्र थे। ६ नवंबर सन् १५०६ ई० को उनसे भेंट हुई थी।

(२) बाबर बादशाह का मंत्री और क़ूचीं जाति का था जिस जाति की बाबर की नानी ईसान् दौलत् भी थीं।

(३) चंगेज़ ख़ाँ के बनाए हुए नियमों को तोरः कहते हैं।

द्वार से भीतर आए, मिर्ज़ा विचार में थे इससे क़ासिम बेग ने बादशाह के कमरबंद को पकड़कर ठहरा लिया और बरंतूक़ बेग और ज़ुलनून बेग से कहा कि निश्चित हुआ था कि मिर्ज़ा आगे बढ़कर मिलेंगे। मिर्ज़ा बड़ी घबड़ाहट से आगे बढ़ कर बादशाह से गले मिले।

जितने दिन बादशाह ख़ुरासान में थे मिर्ज़ाओं ने सत्कार में कोई कमी नहीं की, उन्होंने महफ़िलें कीं और बाग़ों और महलों की सैर करवाई। मिर्ज़ाओं ने जाड़े के दुःखों को बतलाकर कहा कि ठहरिए, जाड़े के अनंतर उज़बेगों से युद्ध करेंगे। पर वे युद्ध करना निश्चित नहीं कर सके। सुलतान हुसेन मिर्ज़ा[1] ने ८० वर्ष तक ख़ुरासान को अच्छी तरह अपने अधिकार में रखा पर मिर्ज़ा लोग छ मास तक पिता के स्थान की रक्षा न कर सके।

जब बादशाह ने इन लोगों को उन स्थानों की आय और व्यय पर जिन्हें इनके लिए नियत किया था ध्यान देते नहीं देखा तब उन स्थानों को देखने के बहाने वे काबुल को चल दिए।

उस वर्ष बर्फ़ बहुत गिरी थी और रास्ते मिट गए थे।

---

(१) सुलतान हुसेन मिर्ज़ा का जन्म सन् १४३८ ई० में और मृत्यु सन् १५०६ ई० में हुई थी। दोनों मिर्ज़ाओं के राज्य की अवनति का मुख्य कारण बाबर ने शेख़ सादी के एक शैर से बतलाया है जिसका अर्थ है कि एक कंबल पर दस साधु सोते हैं पर एक राज्य में दो राजा नहीं रह सकते।

बादशाह और क़ासिम बेग ने उस रास्ते के छोटे होने से वही राह ली। अमीरों ने दूसरी सम्मति दी। जब वह नहीं मानी गई तब साथ छोड़कर सब चले गए। बादशाह और क़ासिम बेग ने अपने पुत्रों सहित तीन चार दिन में बर्फ़ दूर करके रास्ता बना लिया और पीछे पीछे सेना भी निकल आई। इस प्रकार वे गोरबंद पहुँचे जहाँ हज़ारा के विद्रोहियों के मिलने पर बादशाह से युद्ध हुआ। हज़ारावालों का बहुत गाय, बकरी और अगणित सामान शाही सैनिकों के हाथ आया। बहुत लूट को लेकर वे काबुल को चले।

जब वे मनार पहाड़ी के नीचे पहुँचे तो सुना कि मिर्ज़ाखाँ[1] और मिर्ज़ा मुहम्मद हुसेन[2] गोरगाँ विद्रोही हो गए हैं और उन्होंने काबुल को घेर रखा है। बादशाह ने काबुल के लोगों को भरोसा और उत्साह दिलाने के लिए पत्र भेजे कि धैर्य रखो हम भी आगए हैं। बीबी माहरू नामक पर्वत के ऊपर हम आग प्रज्वलित करेंगे तुम भी कोषागार के ऊपर आग जलाना, जिससे हम जान जायँ कि तुम्हें हमारा आना ज्ञात है। सबेरे उस ओर से तुम और इस ओर से हम शत्रु पर आक्रमण करेंगे। परंतु दुर्गवालों के आने के पहले ही बादशाह युद्ध कर के विजय प्राप्त कर चुके थे।

---

(१) सुल्तान वैस (मिर्ज़ाखाँ) बाबर के चाचा महमूद और मौसी सुल्तान-निगार ख़ानम का पुत्र था।

(२) तारीखे-रशीदी के ग्रंथकर्त्ता मिर्ज़ा हैदर दोग़लात का पिता और बाबर की मौसी ख़ूबनिगार ख़ानम का पति था।

मिर्ज़ाख़ाँ अपनी माता के घर में, जो बादशाह की मौसी थीं, छिप रहा। अंत में ख़ानम ने अपने पुत्र को लाकर दोष क्षमा करवाया। मिर्ज़ा मुहम्मद हुसेन अपनी स्त्री[1] के घर में, जो बादशाह की छोटी मौसी थी, प्राण के डर से बिछौने पर जा गिरा और नौकरों से बोला कि बाँध दो। अंत में शाही मनुष्य जानकर मिर्ज़ा मुहम्मद हुसेन को बिछौने से निकालकर बादशाह के आगे लाए। बादशाह ने मौसियों के प्रसन्नतार्थ मिर्ज़ा मुहम्मद हुसेन का दोष क्षमा कर दिया। पहले की चाल पर वे अपने मौसियों के घर प्रति दिन आते जाते थे और अधिकाधिक प्रसन्नता का उपाय करते जिससे मौसियों के हृदय में दुःख न रहे। समतल देश में उन्होंने उनके लिए स्थान और जागीर ठीक कर दी।

ईश्वर ने जब काबुल को मिर्ज़ाख़ाँ की अधीनता से छुड़ा कर इनके अधिकार में रखा उस समय ये तेईस वर्ष[2] के थे और एक

(१) ख़ूबनिगार ख़ानम—यह चग़त्ताई मुग़ल यूनासख़ाँ और ईसान दौलात् कूर्ची की तीसरी पुत्री थी। इसका मुहम्मद हुसेन दोग़लात् से विवाह हुआ जिससे हैदर और हबीबा दो संतानें हुईं। यह पति से एक वर्ष बड़ी थी और १४६३-४ में ब्याही गई थी। बाबर ने १५०१-२ ई० में इसकी मृत्यु का समाचार पाना लिखा है। इसका पति १५०९ में मारा गया।

(२) जिस समय बाबर ने मुहम्मद मुक़ीम अ़ग़ून से काबुल लिया था उस समय (सन् १५०४ ई० में) वे तेईस वर्ष के थे। इसके दो वर्ष बाद मिर्ज़ाख़ाँ का विद्रोह हुआ था।

भी पुत्र नहीं था। सत्रह वर्ष की अवस्था में सुलतान अहमद मिर्ज़ा की पुत्री आयशा सुलतान बेगम[1] को एक पुत्री[2] हुई थी जो एक महीने की होकर मर गई। ईश्वर ने काबुल लेने को शुभ फलदेनेवाला किया कि उसके अनंतर अठारह[3] संतति हुई।
(१) प्रथम—आकम अर्थात् माहम बेगम[4] से हज़रत हुमायूँ

---

(१) आयशा सुलतान बेगम मीरानशाही—यह सुलतान अहमद मिर्ज़ा और कुतूक़ बेगम की तीसरी पुत्री थीं, बाबर की चचेरी बहिन और प्रथम स्त्री थी। सन् १५०० ई० के मार्च महीने में खोजंद में विवाह हुआ, जब वहाँ ख़ुसरोशाह और अहमद तंबोल में युद्ध हो रहा था। बाबर लिखता है कि उसपर मेरा पहले बहुत प्रेम था पर पीछे से कम हो गया। सन् १५०१ ई० में एक पुत्री फ़ख़्रुन्निसा हुई थी। सन् १५०३ ई० में अपनी बड़ी बहिन (स्यात् सलीक़ा जो बाबर के किसी शत्रु को ब्याही थी) के षड्यंत्र के कारण यह बाबर को छोड़कर चली गई। यह और इनकी बहिन सुलतानी बेगम दोनों तिलस्मी महफ़िल में थीं। यद्यपि गुलबदन बेगम ने आयशा (नं० ११) के वहाँ होने की बात लिखने पर भी उसके बारे में कुछ नहीं लिखा है परंतु उसके अनंतर सुलतानी बेगम (नं० १२) के अहमद मिर्ज़ा की पुत्री लिखने से समझ पड़ता है कि वह दोनों के बारे में लिखा गया है।

(२) फ़ख़्रुन्निसा बेगम—बाबर ने अपने आत्मचरित्र में लिखा है कि वह प्रथम संतान थी और जब वह उत्पन्न हुई मैं १६ वर्ष का था।

(३) पर संतानों की सूची में १६ नाम गिनाए हैं।

(४) माहम बेगम—बाबर की प्रिय पत्नी थी। यह ख़ुरासान के अच्छे वंश की थी जिससे सुलतान हुसेन मिर्ज़ा बैक़रा का भी कुछ संबंध था। पर अभी तक किसी पुस्तक से उसके माता, पिता या वंश का पूरा और निश्चित वृत्तांत नहीं मिला है। सुलतान हुसेन मिर्ज़ा की मृत्यु पर जब

बादशाह, बारबूल मिर्ज़ा, मेहजहाँ बेगम, एशाँदौलत बेगम और फ़ारूक़ मिर्ज़ा[१] हुए।

(२) द्वितीय—सुलतान अहमद मिर्ज़ा की पुत्री मासूमा सुलतान बेगम[२] प्रसव के समय ही मर गई। पुत्री[३] का नाम माता के नाम पर रक्खा गया।

(३) तृतीय—गुलरुख़ बेगम[४] से कामराँ मिर्ज़ा, अस्करी मिर्ज़ा,

बाबर हिरात गए तब वहीं सन् १५०६ ई० में विवाह हुआ। ६ मार्च १५०८ ई० को हुमायूं का जन्म हुआ। चार संतान और हुईं पर सब बचपन में ही जाती रहीं।

(१) सन् १५२५ ई० में जन्म और सन् १५२७ ई० में मृत्यु। पिता ने इसे नहीं देखा।

(२) मासूमा सुल्तान बेगम—अहमद मिर्ज़ा की पाँचवीं और सबसे छोटी पुत्री थी। इसकी माता हबीबा सुल्तान बेगम अर्गून थी। सन् १५०७ ई० में बाबर से विवाह हुआ। बाबर की प्रथम स्त्री आयशा की सौतेली बहिन थी। यह विवाह बाबर के कथनानुसार प्रेम के कारण हुआ था।

(३) मासूमा सुल्तान बेगम—मुहम्मद ज़माँ मिर्ज़ा बैक़रा से विवाह हुआ था।

(४) गुलरुख़ बेगम—गुलरुख़ का मक़बरा सन् १५४५ ई० में काबुल के बाहर वर्तमान था। बाबर के आत्मचरित्र में कामराँ का सुल्तान अली मिर्ज़ा मामा की पुत्री से और हुमायूँ का यादगार मामा की पुत्री से विवाह होना लिखा है। ये दोनों बेगाचिक अमीर थे। सुल्तान अली के जीवन के घटनाओं का मिलान करने से जाना जाता है कि वह गुलरुख़ बेगम का भाई होगा।

शाहरुख़ मिर्ज़ा, सुलतान अहमद मिर्ज़ा और गुलएज़ार बेगम[1] हुईं।

(४) चतुर्थ–दिल्दार बेगम[2] को गुलरंग बेगम,[3] गुलचेहरा

---

(१) गुलएज़ार बेगम—गुलबदन बेगम ने इसके विवाह के बारे में कुछ नहीं लिखा है पर वह यादगार नासिर की स्त्री रही होगी।

(२) दिल्दार बेगम—इसके पति बाबर और पुत्री गुलबदन दोनों ही ने इसके माता पिता आदि के बारे में कुछ भी नहीं लिखा है। बाबर के आत्म-चरित्र के छुटे हुए स्थानों में से सन् १५०८ से १५१६ ई० तक का वृत्तांत है जिस बीच गुलरुख़ बेगम और दिल्दार बेगम दोनों से विवाह हुआ होगा। सन १५०८ ई० में केवल माहम बेगम बच गई थीं और आयशा, ज़ैनब और मासूमा मृत्यु या तिलाक़ से विदा हो चुकी थीं। इससे किसी वंश की होने पर भी दिल्दार बेगम मुसल्मानी शरअ के अनुसार चार विवाहिता स्त्रियों में गिनी जा सकती थीं। इसका मीरानशाही होना भी संभव है क्योंकि इसका वर्णन सलीमा सुलतान के वृत्तांत के साथ आया है। सन् १५१९ ई० में इसके पुत्र हिंदाल को माहम का गोद ले लेना इसके छोटे वंश का होना सिद्ध नहीं करता। माहम मुख्य और प्रिय बेगम होने के साथ ही दुखित भी थी इसीसे उसका गोद लेना बलात् नहीं था। इसको पाँच संतान हुईं और गुलबदन बेगम ने अपनी पुस्तक में इसका बहुधा जिक्र किया है। दूसरे ग्रंथकारों ने भी इसका प्रतिष्ठा के साथ वर्णन किया है। यह बुद्धिमती और समझदार स्त्री थी।

(३) गुलरंग बेगम—इसका सन् १५११ और १५ ई० के बीच खोस्त में जन्म हुआ जब मुग़ल विद्रोह के अनंतर बाबर काबुलसे निकाला गया था। बाबरके ममेरे भाई ईसन तैमूर चग़त्ताई से सन् १५३० ई० में इसका विवाह हुआ था। सन् १५४३ ई० के बाद ईसन तैमूर का और १५३४ ई० के बाद गुलरंग का जब वह ग्वालियर में थी कुछ पता नहीं लगता।

बेगम[1], हिंदाल मिर्ज़ा, **गुलबदन बेगम** और अलवर मिर्ज़ा हुए।

अर्थात् काबुल लेना शुभ साइत में हुआ था कि सब संतानें काबुल में हुईं, केवल दो बेगमें—माहम बेगम की पुत्री मेह्जान[2] बेगम और दिल्दार बेगम की गुलरंग बेगम—ख़ोस्त में हुई थीं।

बादशाह फ़िर्दौस-मकानी के प्रथम पुत्र हुमायूँ बादशाह का शुभ जन्म ४ ज़ीउलक़दः सन् ९१३ हि०(६ मार्च १५०८ ई०) मंगलवार की रात्रि को काबुल के दुर्ग में हुआ था जब सूर्य मीन राशि में था। उसी वर्ष बादशाह फ़िर्दौस-मकानी ने अमीरों और प्रजा को आज्ञा दी कि हमें बादशाह कहो क्योंकि हुमायूँ बादशाह के जन्म के पहले मिर्ज़ा बाबर के नाम और पदवी से पुकारे जाते थे। सभी बादशाहों के पुत्र को मिर्ज़ा कहते हैं और हुमायूँ बादशाह के जन्म के वर्ष में उन्होंने अपने को बादशाह

(१) गुल चेहरा बेगम—इसका जन्म सन् १५१५ और १५१७ ई० के बीच में हुआ था। बाबर के ममेरे भाई तोख़्ता बोग़ा सुल्तान से इसका विवाह सन् १५३० ई० में हुआ था जब वह १४ वर्ष की थी। सन् १५३३ ई० में विधवा हुई और फिर सन् १५४६ ई० तक का कुछ हाल नहीं मालूम हुआ। पर इतने दिनों तक विवाह नहीं होना संभव नहीं जान पड़ता। सन् १५४६ ई० में अब्बास सुल्तान उज़्बेग से विवाह हुआ था पर हुमायूँ की बल्ख़ पर चढ़ाई को सुन वह इसे छोड़-कर भाग गया। १५५७ ई० में यह गुलबदन बेगम और हमीदा बानू बेगम के साथ भारत आई।

(२) मूल में मेह् जान और मेह्जहाँ दोनों नाम दिए हैं।

कहलवाया। बादशाह जन्नत-आशिआनी के जन्म का वर्ष[1] सुलतान हुमायूँ ख़ाँ[1] और शाह फ़ीरोज़क़द्र[2] से पाया जाता है।

संतानोत्पत्ति के अनंतर समाचार आया कि शाहीबेग ख़ां को शाह इस्माइल ने मार डाला[3]।

बादशाह काबुल को नासिर मिर्ज़ा[4] के हाथ सौंप अपने मनुष्यों, स्त्री और संतानों को जिनमें हुमायूँ बादशाह, मेह्-जहाँ बेगम, बारबोल मिर्ज़ा, मासूमा सुलतान बेगम और मिर्ज़ा कामराँ थे साथ लेकर समरक़ंद को चले[5]। शाह इस्माइल की सहायता से उन्होंने समरक़ंद विजय किया और आठ महीने तक कुल मावरुन्नहर अधिकार में रहा। भाइयों की शत्रुता और मुग़लों की दुश्मनी से कोलमलिक में उबेदुल्ला ख़ाँ[6] से ये

(१) अब्जद से प्रत्येक अक्षर के जोड़ से वर्ष निकलता है।

६० + ३० + ८ + १ + ५० + ५ + ४० + १ + १० + १ + ५० + ६०० + १ + ५० = ९१३

(२) ३०० + १ + ५ + ८० + १० + २०० + ६ + ७ + १०० + ४ + २०० = ९१३

(३) २ दिसंबर सन् १५१० ई० को मर्व के युद्ध में यह मारा गया था। इस भयानक शत्रु के मारे जाने पर बाबर ने एक बार फिर पैतृक राज्य की विजय का प्रयत्न किया परंतु उज़बेगों ने उसे सफल नहीं होने दिया। इसी के अनंतर उसने भारतविजय का विचार दृढ़ किया।

(४) बाबर का सौतेला भाई जो उम्मेद अंदजानी का पुत्र था।

(५) जनवरी १५११ (शव्वाल ९१६ हि०)

(६) उबेदुल्लाख़ाँ शैबानीख़ाँ का भतीजा था। कोलमलिक

परास्त हुए और उस प्रांत में ठहर न सके। तब बदख़्शाँ और काबुल को चले और मावरुन्नहर का विचार मन से निकाल दिया। सन् ९१० हि० (१५०४ ई०) में काबुल पर अधिकार हो चुका था।

हिंदुस्तान जाने की इच्छा इनकी सदा से थी पर अमीरों की सम्मति की ढिलाई और भाइयों के साथ न देने से यह पूरी नहीं हुई थी। जब भाई लोग अंत में चल बसे[1] और कोई अमीर नहीं रहा जो इनकी इच्छा के विरुद्ध बोल सके तब सन् ९२५ हि० (१५१९ ई०) में इन्होंने बिजौर[2] को दो तीन घड़ी में युद्ध कर लेलिया और वहाँ के सब रहनेवालों को मरवा डाला।

उसी दिन अफ़ग़ान आग़ाच:[3] के पिता मलिक मंसूर

बुखारा प्रांत में है और कोल का अर्थ भील है। इसी वर्ष उज़बेगों ने बाबर को दूसरी बार फिर से पराजित किया था (१५११ई०)।

(१) सन् १५०७ ई० में जहाँगीर मिर्ज़ा और सन् १५१५ ई० में नासिर मिर्ज़ा की मदिरा-पान के कारण मृत्यु होगई।

(२) भारत पर आक्रमण करने को जाते समय यह घटना रास्ते में हुई थी। यहाँ के रहनेवाले मुसलमान नहीं थे।

(३) बीबी मुबारिका—बाबर के साथ इसका विवाह ३० जनवरी सन् १५१९ ई० को हुआ था और यह विवाह उसकी जाति और बाबर के बीच संधि स्थापन के लिये हुआ था। इसका और इसके विवाह का अच्छा वर्णन 'तारीख़े रहमत ख़ानी' नामक पुस्तक में दिया है जिसका अनुवाद मि० ब्लौकमैन ने 'ऐन अफ़ग़ान लीजेंड' के नाम से किया है। गुलबदन बेगम ने सर्वत्र इसे अफ़ग़ानी आग़ाचः के नाम से लिखा है।

यूसुफ़ज़ई ने आकर बादशाह की अधीनता स्वीकार की। बादशाह ने उसकी पुत्री को लेकर उससे स्वयं विवाह कर लिया और मलिक मंसूर को बिदा किया। उसे घोड़ा और राजा के योग्य खिलअत दिया और कहा कि जाकर प्रजा आदि को लाकर अपने ग्रामों में बसाओ।

क़ासिम बेग ने जो काबुल में था प्रार्थनापत्र भेजा कि एक शाहज़ाद: और पैदा हुआ है और मैं धृष्टता से लिखता हूँ कि यह भारत-विजय और अधिकार का शुभ शकुन है, आगे बादशाह मालिक हैं जैसी प्रसन्नता हो। बादशाह ने साइत से मिर्ज़ा हिंदाल[1] नाम रखा।

बिजौर-विजय के अनंतर वे भीर: को चले जहाँ पहुँचने पर

हाफ़िज़ मुहम्मद लिखता है कि बाबर का इसपर बहुत प्रेम था और सन् १५२६ ई० में माहम बेगम और गुलबदन बेगम के साथ यह भी अन्य बेगमों से पहलेही भारत आई थी। यह निस्संतान थी और हाफ़िज़ मुहम्मद कहता है कि दूसरी बेगमों ने गर्भ नहीं रहने के लिये इसे दवा खिला दी थी। यह अकबर के राजत्व काल में मरी। इसका एक भाई मीर जमाल बाबर के साथ भारत आया और हुमायूँ तथा अकबर के समय में अच्छे पद पर रहा। हिंदाल का भी एक प्रिय अफ़सर इसी नाम का था जो उसकी मृत्यु पर अकबर की सेवा में चला आया। यह वही युसुफ़ज़ई हो सकता है।

(१) इनका नाम अबुन्नासिर मिर्ज़ा था पर हिंद के आधार पर हिंदाल नाम से ही यह अधिक प्रसिद्ध हुआ। यह गुलबदन बेगम का सहोदर भाई और माहम बेगम का पोष्यपुत्र था।

२

उन्होंने लूटपाट नहीं किया और चार लाख शाहरुखी[1] लेकर संधि करली और उसे अपने सैनिकों में नौकरों की गिनती के अनुसार बाँटकर वे काबुल चले[2]।

उसी समय बदख़्शाँ के मनुष्यों का पत्र आया कि मिर्ज़ा-ख़ाँ मर गए और मिर्ज़ा सुलेमान की अवस्था छोटी है तथा उज़बेग पास हैं। इस देश पर भी ध्यान रखिए कि कहीं बदख़्शाँ भी हाथ से न निकल जाय। जब तक बदख़्शाँ का कुछ प्रबंध हो तब तक मिर्ज़ा सुलेमान की माता[3] मिर्ज़ा को ले कर आ

---

(१) अर्सकिन ने २०००० पाउंड के बराबर माना है जिससे एक शाहरुखी इस समय बारह आने की हुई।

(२) सन् १५१६ ई० के फरवरी के अंत में।

(३) सुल्तान-निगार ख़ानम—यूनसख़ाँ चग़त्ताई और शाह बेगम बदख़्शी की पुत्री थी। सुलतान महमूद मिर्ज़ा मीरानशाही से इसका विवाह हुआ जिससे सुलतान वैस मिर्ज़ाख़ाँ पुत्र हुआ। सन् १४९५ ई० में यह विधवा हुई। तब बाबर से बिना कहे ताशकंद में भाइयों के यहाँ चली गई। आदिक़ सुलतान जूजी ने जो उज़बेग क़ज़्ज़ाक़ों का सर्दार था उससे विवाह किया। इसके भाई महमूद ख़ाँ के शैबानीख़ाँ के हाथ मारे जाने पर आदिक़ के साथ मुग़लिस्तान गई। आदिक़ से दो पुत्री हुईं जिसमें एक का विवाह अब्दुल्ला क़ूर्ची से हुआ जो जवानी में मर गई और दूसरी का रशीद सुलतान चग़त्ताई से हुआ। आदिक़ की मृत्यु पर उसके छोटे भाई क़ासिम ने उससे सगाई कर ली। क़ासिम की मृत्यु पर इसका सौतेला पुत्र ताहिर सर्दार हुआ जो इसे माँ से बढ़कर मानता था, तिसपर भी वह वहाँ से अपने भतीजे सुलतान सैयदख़ाँ के यहाँ आकर रही। सन १५२८ ई० में इसकी मृत्यु हुई।

पहुँची। बादशाह ने उनकी इच्छा और प्रसन्नता के अनुसार उसे पिता के पद और जागीर पर नियुक्त किया और बदख़्शाँ हुमायूँ बादशाह को सौंप दिया। हुमायूँ बादशाह उस प्रांत को चले गए।

बादशाह और आकम भी पीछे ही बदख़्शाँ को गए और कुछ दिन वहीं एक साथ रहे। हुमायूँ वहीं रह गए और बादशाह और आकम काबुल लौट आए[1]।

कुछ समय के अनंतर वे क़िलात और क़ंधार गए। क़िलात पहुँच उसे विजय करते हुए क़ंधार गए। क़ंधार[2] वाले डेढ़ वर्ष तक दुर्ग में रहे जिसके उपरांत बहुत युद्ध पर वह ईश्वरीय कृपा से विजय हुआ। बहुत धन हाथ आया और सैनिकों और नौकरों को धन और ऊँट बाँटे गए। क़ंधार मिर्ज़ा कामराँ को देकर वे स्वयं काबुल चले आए।

पेशख़ान: आगे जाने पर १ सफ़र सन् ६३२ हि० (१७ नवंबर सन् १५२५ ई०) शुक्रवार को जब सूर्य्य धन राशि में था वे यकलंग: पर्वत पार कर डीहे-याक़ूब की घाटी में उतरे। वहीं ठहरे और दूसरे दिन हिंदुस्तान की ओर कूच करते हुए चले।

---

(१) उस समय हुमायूँ की अवस्था तेरह वर्ष की थी जिस कारण स्वयं बाबर वहाँ गया और प्रबंध आदि ठीक कर लौट आया।

(२) यह शाह बेग अ़र्गून के अधिकार में था जिसके पुत्र शाह हुसेन ने सिंध में हुमायूँ से बड़ी शत्रुता की थी। इस घेरे में कितने दिन लगे थे इसमें मतभेद है और बाबर के आत्मचरित्र के छुटे हुए स्थानों में यह घटना पड़ गई है।

सन् ६२५ हि०[1] (१५१६ ई०) से सात आठ वर्ष तक कई बार सेना हिंदुस्तान की ओर भेजी गई थी और हर बार देश और परगने अधिकृत किए गए, जैसे भीरः, बजौर, स्याल-कोट, दिपालपुर, लाहौर आदि। यहाँ तक कि १ सफ़र सन् ६३२ हि० शुक्रवार को वे डोहे-याकूब के पड़ाव पर से कूच करते हिंदुस्तान की ओर चले और उन्होंने लाहौर, सरहिंद और हर एक प्रांत जो रास्ते में था विजय किया। ८ रज्जब सन् ६३२ हि० शुक्रवार को (२० अप्रैल सन् १५२६ ई०) पानीपत[2] में वह (बाबर) सुलतान सिकंदर लोदी के पुत्र तथा बहलोल लोदी के पौत्र सुलतान इब्राहीम से युद्ध करके ईश्वरीय कृपा से विजयी हुए। इस युद्ध में सुलतान इब्राहीम मारा गया और यह विजय केवल ईश्वर की कृपा से हुई थी क्योंकि सुलतान इब्राहीम के पास एक लाख अस्सी हज़ार सवार और डेढ़ हज़ार मस्त हाथी थे। बादशाही सेना व्यापारी, भले और बुरे सहित बारह सहस्र थी और काम के योग्य केवल छ सात हज़ार सैनिक थे।

पाँच बादशाहों का कोष हाथ आया और सब बाँट दिया गया[3]। उसी समय हिंदुस्तान के अमीरों ने प्रार्थना की कि हिंदुस्तान में पूर्व के बादशाहों के कोष को व्यय करना

(१) मूल में ६३५ है पर वह लेखक की भूल है।

(२) पानीपत का प्रथम युद्ध।

(३) मई महीने की ११ या १२ को बाँटा गया और अपने लिये कुछ नहीं रखने के कारण बाबर क़लंदर अर्थात् साधू कहलाया।

दोष मानते हैं और उसे बढ़ाकर संचित करते हैं जिसके विरुद्ध आपने कुल कोष बाँट दिया।

ख़्वाजा कलाँ बेग[१] ने कई बार काबुल जाने को छुट्टी माँगी कि मेरा स्वभाव भारत के जल-वायु के अनुकूल नहीं है, यदि छुट्टी हो तो कुछ दिन काबुल में रहूँ। बादशाह इन्हें जाने देना नहीं चाहते थे पर जब देखा कि ख़्वाजा बहुत हठ करते हैं तब छुट्टी दे दी और कहा कि जब जाओ तब सुलतान इब्राहीम पर विजय के कारण मिली हुई भारत की भेंट को जिसे हम बड़ों, बहिनों और हरमवालियों के लिये भेजेंगे लेते जाओ। सूची हम लिखकर देंगे जिसके अनुसार बाँटना। बाग़ और दीवानख़ाने में हर एक बेगम के लिये अलग अलग[२] पर्दे वाला तंबू तनवाने की आज्ञा देना जिनमें वे इकट्ठी होकर पूर्ण विजय के लिये ईश्वर की प्रार्थना करें

हर एक बेगम के लिये यह सूची है। सुलतान इब्राहीम की वेश्याओं में से एक वेश्या, एक सोने की रिकाबी जिसमें रत्न, माणिक, मोती, गोमेदक, हीरा, पन्ना, पीरोज़ा, पुखराज

---

(१) बाबर का स्वामिभक्त सेवक और मित्र था। मौलाना मुहम्मद सदरुद्दीन के सात पुत्रों में से एक था जिन सब ने बाबर की सेवा में जीवन व्यतीत किया।

(२) एकही ख़ेमे में कैंप की चाल पर जलसा करने की नहीं आज्ञा थी। प्रत्येक बेगम ने अलग अलग अपनी अपनी सेविकाओं के साथ एक एक क़नातदार ख़ेमें में जलसा किया जिससे तैयारी और शोभा बहुत बढ़ गई।

और लहसुनिया आदि भरे हों, अशरफ़ियों से भरी दो सीप की थालियाँ, दो थाल शाहरुख़ी और हर प्रकार की नौ नौ वस्तु हर एक को मिले; अर्थात् चार थाली और एक रिकाबी। एक वेश्या, एक रत्नभरी रिकाबी और अशरफ़ी और शाहरुख़ी की एक एक थाली ले जाओ और जैसी आज्ञा दे चुके हैं उसके अनुसार वही रत्नभरी रिकाबी और वही वेश्या जिसे हमने अपने बड़ों के लिये भेजा है लेजाकर भेंट करना। दूसरी भेंट जो कुछ भेजी है वह पीछे देना। बहिनों, संतानों, हरमों, नातेदारों, बेगमों, आग़ों,[1] धायों, धाय-भाइयों, स्त्रियों और सब प्रार्थना करनेवालों को जड़ाऊ गहने, अशरफ़ी, शाहरुख़ी और कपड़े अलग अलग देना जिसका विवरण सूची में दिया है। बाग़ और दीवानख़ाने में तीन दिन बड़ी प्रसन्नता से बीत गए। सब धन से उन्मत्त हुए और बादशाह की भलाई और ऐश्वर्य के लिये फ़ातिहा[2] पढ़ कर प्रसन्नता से ईश्वर की प्रार्थना[3] की गई।

अमूए असस के लिये ख़्वाजा कलाँ बेग के हाथ एक बड़ी अशरफ़ी भेजी जिसका तौल तीन सेर बादशाही और पंद्रह सेर हिंदुस्तानी था। ख़्वाजा से कह दिया था कि यदि तुमसे असस पूछे कि मेरे लिये क्या भेजा है तब कहना कि एक

(१) आग़ा का स्त्रीलिंग आग़ः है जो शाही महल में काम करती है।

(२) क़ुरान के प्रथम परिच्छेद को फ़ातिहा कहते हैं।

(३) सिजदः क़ुरान के एक परिच्छेद का नाम है जिसके पढ़ने में सिर झुकाकर भूमि से लगाना पड़ता है।

अशरफ़ी और सचमुच ऐक ही थी भी। वह आश्चर्य कर तीन दिन तक घबड़ाता रहा। आज्ञा दी थी कि अशरफ़ी में छेद कर के और उसकी आँखें बाँधकर उसके गले में डाल देना और महल में भेज देना। जब अशरफ़ी में छेदकर के उसके गर्दन में डाल दिया तब उसके बोझ से उसे घबड़ाहट और प्रसन्नता हुई और वह दोनों हाथ से अशरफ़ी को पकड़कर कहता फिरता था कि कोई मेरी अशरफ़ी न ले। हर एक बेगम ने भी दस या बारह अशरफ़ियाँ दीं जिससे सत्तर अस्सी अशरफ़ियाँ बटुर गईं।

ख्वाजा कलाँ बेग के काबुल जाने के अनंतर आगरे में हुमायूँ बादशाह, मिर्ज़ाओं, सुलतानों और अमीरों को कोष से भेंट दी गई। हर ओर प्रांतों में विज्ञापन दिया कि जो कोई हमारी नौकरी करेगा उस पर पूरी कृपा होगी, मुख्य करके उन पर जिन्होंने पिता, दादा और पूर्वजों की सेवा की हो। यदि ये आवें तो योग्यता के अनुसार पुरस्कार पावेंगे। साहिबक़िराँ और चंगेज़ख़ाँ के वंशधर हमारे यहाँ आवेंगे तब ईश्वर ने जो हिंदुस्तान हमें दिया है उस राज्य को हमारे साथ उपभोग करेंगे।

अबू सईद मिर्ज़ा की पुत्रियों में से सात[१] बेगमें आई थीं—गौहरशाद बेगम, फ़ख्रेजहाँ बेगम,[२] ख़दीजः सुलतान

(१) नाम केवल छ का दिया है।

(२) फ़ख्रेजहाँ बेगम--मीर अलाउल्मुल्क तर्मिज़ी की स्त्री और शाह बेगम और कीचक बेगम की माता थी। सन् १५६६ ई० में भारत

बेगम,[1] बदीउज्जमाल बेगम[2], आक़ बेगम[3] और सुलतान बख़्त। बादशाह के मामा सुलतान महमूदख़ाँ की पुत्री ज़ैनब सुलतान ख़ानम[4] और छोटे मामा इलाचाख़ाँ की पुत्री मुहिब्ब सुलतान[5] ख़ानम (भी आईं)। अर्थात् ९६ बेगमें और

आई और दो वर्ष रही। बाबर से छुट्टी ले २० सितंबर सन् १५२८ ई० को काबुल रवान: हुई। फिर आगरे आई और तिलस्मी महफ़िल में रही।

(१) ख़दीजः सुलतान बेगम——पति का नाम नहीं मालूम हुआ। इसने अपनी बहिन फ़ख़्रेजहाँ के साथ काबुल जाने के लिये छुट्टी ली पर कई कारणों से नहीं जा सकी। तिलस्मी महफ़िल में थी और यदि यह काबुल गई तो कब गई सो ज्ञात नहीं।

(२) बदीउज्जमाल बेगम—बाबर की दोनों पुत्रियों के विवाह और तिलस्मी महफ़िल में थी।

(३) आक़ बेगम——ख़दीजा और अबू सईद की पुत्री थी। यह भी बाबर की दोनों पुत्रियों के विवाह और तिलस्मी महफिल में थी।

(४) ज़ैनब सुलतान ख़ानम चग़त्ताई मुग़ल——अपने चचेरे भाई सुलतान सैयदख़ाँ काशग़री की प्रिय स्त्री थी। शाह मुहम्मद सुलतान की चाची थी जिसे मुहम्मदी बर्लास ने मार डाला था। इब्राहीम की माँ थी जिसका जन्म सन् १५२४ ई० में हुआ था और यह सैयदख़ाँ का तीसरा पुत्र था। इसे मुहसिन और मुहम्मद यूसुफ़ दो पुत्र और हुए। सन् १५३३ ई० के जुलाई में पति की मृत्यु पर इसके सौतेले पुत्र रशीद ने इसे निकाल दिया और यह पुत्रों सहित काबुल में आकर हैदर मिर्ज़ा से मिली और कामराँ की रक्षा में रहने लगी। तिलस्मी महफ़िल (१५३१ ई०) में गुलबदन बेगम ने इसका नाम लिखा है पर वह ठीक नहीं है। विवाह वाले दूसरे जलसे (१५२७ ई०) में रही होगी।

(५) तारीख़े-रशीदी के ग्रंथकर्ता मिर्ज़ा हैदर दोग़लात की स्त्री थी।

ख़ानम थीं जिन सबके लिये जगह, जागीर और पुरस्कार नियत हुए थे।

चार वर्ष तक जब ये आगरे में थे हर शुक्रवार को अपनी बूआओं से मिलने जाते थे। एक दिन हवा गर्म थी इससे बेगम साहिबः ने कहा कि हवा गर्म है यदि एक शुक्रवार को नहीं जाएँगे तो क्या होगा? बेगमें इससे दुखित नहीं होंगी। बादशाह ने कहा कि माहम तुम्हारा यह कहना आश्चर्य्य-जनक है। अबू सईद मिर्ज़ा की पुत्रियाँ पिता और भाइयों से अलग होकर (भारत आई हैं) यदि हम उन्हें प्रसन्न नहीं रखेंगे तब कैसा होगा?

ख़्वाजा क़ासिम राज को आज्ञा दी कि एक अच्छा कार्य्य तुम्हें बतलाते हैं जो यह है कि यदि हमारी बूआएँ कोई काम अपने महल में बनवाना चाहें तब काम बड़ा होने पर भी उसे मन लगाकर झट तैयार कर देना।

आगरे में नदी के उस पार कई इमारतें बनने की आज्ञा दी। हरम और बाग़ के बीच में अपने लिये एक पत्थर का महल बनवाया और दीवानख़ाने में भी एक महल बनवाया जिसके बीच में एक बावली और चारों बुर्जों में चार कमरे थे। नदी के किनारे पर चौखंडी [1] बनवाई थी। धौल-

(1) चार खंड का मकान जिसके ऊपर के तीनों खंड चारों ओर खुलते खंभों पर रहते हैं और हर एक खंड चौकोर और नीचे वाले से छोटा होता है।

पुर में एक पत्थर के टुकड़े में चौखूटी बावली दस गज़ लंबी चौड़ी बनने की आज्ञा दी थी और कहा था कि जब बावली तैयार हो जायगी तब शराब से भरूँगा। पर राणा साँगा के साथ युद्ध होने के पहले शराब नहीं पीने का प्रण किया था इससे नीबू के शरबत से उसे भरवाया।

सुलतान इब्राहीम पर विजय पाने के एक वर्ष बाद राणा, हिंदू (मांडू) के रास्ते से अगणित सेना सहित तैयार आया[1]। सर्दार, राजे और राना जिन्होंने आकर बादशाह की अधीनता स्वीकार कर ली थी सब विद्रोही होकर राणा के पास चले गए। यहाँ तक कि कोल जलाली, संभल और रापरी आदि सब पर्गने, राय, राजे और अफ़गान सब विद्रोही हो गए। दो लाख सवार के लगभग इकट्ठे हो गए।

इसी समय मुहम्मद शरीफ़ ज्योतिषी ने सैनिकों से कहा कि ठीक यही है कि बादशाह युद्ध न करें क्योंकि अष्ट तारा[2]

---

(१) यह युद्ध १६ मार्च सन् १५२७ ई० को सीकरी की पहाड़ी के पास कन्हवा में हुआ था। गुजरात विजय के अनंतर इसी स्थान पर अकबर ने फ़तहपुर सीकरी नामक नगर बसाया था।

(२) मूल का शुक्र तारा अशुद्ध है और मिस्टर बेवरिज उस शब्द को साक़िज़ यल्दोज, अर्थात् अष्ट तारा पढ़ते हैं जिसे फारसवाले अशुभ मानते हैं। बाबर लिखता है कि कर्दज़िन के युद्ध में (१५०१ ई०) जो शैबानी के साथ हुआ था अष्ट तारा दोनों सेना के बीच में था। उसीका कथन है कि कन्हवा युद्ध में शरीफ़ ने सूचना दी थी कि मंगल पश्चिम में है और जो पूर्व से आवेगा वह पराजित होगा। गुलबदन बेगम ने इन्हीं दोनों युद्धों के सूचक ताराओं में गड़बड़ कर दिया है।

सामने है। बादशाही सेना में बड़ी घबड़ाहट पड़ गई, सैनिक-गण बड़े सोच विचार में पड़ गए और युद्ध से विमुख होने लगे[१]। जब सैनिकों का यह हाल देखा और शत्रु भी पास पहुँच गए तब उन्होंने यह उपाय विचारा। अर्थात् उन्होंने भगैलों और विद्रोहियों को छोड़कर बचे हुए अमीरों, सुलतानों, खानों, बड़े और छोटे सब को एकत्र होने की आज्ञा दी। जब सब इकट्ठे होगए तब कहा कि कुछ जानते हो कि हमारे और हमारी जन्मभूमि और देश के मध्य में कई महीने की राह है। ईश्वर उस दिन से बचावे और उसे न लावे क्योंकि यदि सैनिक गण परास्त हो जायँ तो हम कहाँ और हमारी जन्म भूमि और देश कहाँ? काम अजनबियों और परायों से पड़ा है। बस सब से अच्छा यही है कि अपने लिये ये दो बातें ठीक कर लेनी चाहिएँ कि यदि शत्रु को परास्त किया तो ग़ाज़ी[२] हुए और मारे गए तो शहीद[३] हुए। दोनों प्रकार से अपनी मुक्ति है और पदवी बड़ी और बढ़कर है[४]।

---

(१) युद्ध में विजय पाने पर बाबर ने शरीफ को खूब फटकारा और कुछ देकर उसको अपने घर लौटा दिया। सन १५१९ ई० में वह खोस्त (माहम का देश) से काबुल आया था और वहाँ से किसी बादशाही संबंधी के साथ भारत आया था।

(२) ग़ाज़ी उन्हें कहते हैं जो दूसरे मतावालों को मारते हैं।

(३) शहीद वे हैं जो धर्म के लिये मारे जाते हैं।

(४) मिस्टर अर्सकिन बाबर के शब्द यों लिखते हैं। 'हर एक मनुष्य मरता है, केवल परमेश्वर अमर है। जीवन रूपी मजलिस में

सब ने एक मत हो मान लिया। स्त्री के तिलाक़ और क़ुरान की शपथ खाई, फ़ातिहा पढ़ा और कहा कि बादशाह, ईश्वर के इच्छानुसार जब तक प्राण और शरीर में साँस रहेगा तब तक बलिदान चढ़ने और स्वामि-भक्ति में कमी नहीं करेंगे।

राणा साँगा से युद्ध के दो दिन पहले ही बादशाह ने मदिरापान नहीं करने की शपथ खाई यहाँ तक कि कुल मना की हुई वस्तुओं की शपथ करली। चार सौ नामी युवकों ने जो वीरता, एकता और मित्रता का दावा रखते थे उस सभा में बादशाह के अनुरूप ही शपथ खाई। कुल धर्मविरुद्ध बरतन, सोने और चांदी के कटोरे, सुराही इत्यादि को तुड़वाकर दरिद्रों और भिखमंगों को बांट दिया गया।

हर ओर प्रांतों में विज्ञापन-पत्र भेजे कि चुंगी, अन्न पर के कर इत्यादि को कुल क्षमा कर दिया जिसमें कोई व्यापारियों आदि के आने जाने में रुकावट न डाले और वे बेखटके और बेरुकावट आवें जायँ

जिस दिन राणा साँगा से युद्ध होने को था उसी रात[1] को

जो आता है उसे बिदा होते समय मृत्यु रूपी प्याला पीना पड़ता है। प्रतिष्ठा के साथ मृत्यु मानहीन जीवन से अच्छी है।'

गुलबदन बेगम के लिखने के अनुसार बाबर ने अवश्य ही देश और गृह कि बातें भी चलाई होंगी जिसका लिखना स्त्री के ही उपयुक्त है।

(१) बाबर लिखता है कि क़ासिम हुसेन इसके पहले ही आया था और उसके साथ ५०० मनुष्य थे। मुहम्मद शरीफ़ भी इसीके साथ आया था। (आत्म० ३९२)

क़ासिम हुसेन सुलतान के, जो सुलतान हुसेन का नाती अर्थात् उसकी पुत्री आयशा सुलतान बेगम का पुत्र था, आने का समाचार आया कि वह ख़ुरासान से आकर दस कोस पर पहुँच गया है। बादशाह यह समाचार सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और पूछा कि कितने मनुष्य साथ हैं? जब ज्ञात हुआ कि तीस चालीस सवार हैं तब एक सहस्र शस्त्रधारी और सुसज्जित सवारों को आधी रात के समय भेजा कि उसी रात्रि को साथ मिलकर आवें जिससे शत्रु तथा दूसरे समझें कि सहायता समय पर आ पहुँची। जिसने यह राय और उपाय सुना बड़ा प्रसन्न हुआ।

उसीके सबेरे सन ९३३ हि० के मादिउलअव्वल[1] महीने में सीकरी पहाड़ के नीचे जिसपर कुछ दिन के अनंतर फ़तहपुर बसा राणा साँगा से युद्ध हुआ जिसमें ईश्वरी कृपा से उन्होंने विजय पाई और वे ग़ाजी[2] हुए।

राणा साँगा पर विजय के एक वर्ष बाद आकाम माहम बेगम काबुल से हिंदुस्तान आई और यह तुच्छ जीव भी उन्हींके साथ अपनी बहिनों के आगे ही आकर अपने पिता से मिला। जब आकाम कोल में पहुँची तब बादशाह ने दो पालकी तीन सवारों के साथ भेजीं। कोल से आगरे पहुँचीं और बादशाह

(१) १३ जुमादिउलअव्वल सन् ९३३ हि० = १६ मार्च सन् १५२७ ई०।

(२) इस विजय पर पहले पहल बाबर ने यह पदवी धारण की थी क्योंकि इस बार शत्रु मुसल्मान नहीं थे।

का विचार था कि कोल जलाली तक स्वागत को जावें। संध्या की निमाज़ के समय एक मनुष्य ने आकर कहा कि बेगम साहब को दो कोस पर छोड़ा है। बादशाह घोड़े के तैयार होने तक नहीं ठहर सके और पैदल ही चल दिए। माहम के ननच: के घर के आगे मिले और माहम ने चाहा कि पैदल होवें पर बादशाह नहीं ठहरे और स्वयं आकाम के साथवालों के संग पैदल ही अपने महल तक आए।

जिस समय आकाम बादशाह के पास जा रही थीं मुझे आज्ञा दी कि दिन को बादशाह से मिलना।

······नौ सवार, अठारह घोड़े, दो पालकी जिन्हें बादशाह ने भेजा था और एक पालकी जो काबुल से साथ आई थी—आकाम की सौ मुग़लानी दासियाँ अच्छे घोड़ों पर सवार अच्छी प्रकार सजी हुईं[२]।

मेरे पिता के ख़लीफ़ा[३] अपनी स्त्री सुलतानम के साथ नौग्राम[४]

---

(१) तोक़ूज का अर्थ नौ है। तुर्की प्रजा बादशाहों को नौ वस्तु भेंट देना शुभ समझती है।

(२) यह माहम बेगम के साथवालों का वर्णन है पर बेजोड़ होने से समझ पड़ता है कि दूसरी पुस्तक से उतारने में कुछ गड़बड़ हो गया है।

(३) ख्वाजा निज़ामुद्दीन अली बर्लास जो बाबर के वज़ीर भी थे। इन्हींके भाई जूनेद बर्लास की स्त्री शहरबानू बाबर की सौतेली बहिन थी।

(४) जमुना के पूर्व आगरे से दो कोस पर है। उस समय तक शाही महल पश्चिम ओर नहीं बन चुके थे (राजपुताना गजे़टियर ३.२७४)

तक स्वागत को आए। मैं पालकी में थी जब मेरे मामों ने मुझको एक बग़ीचे में उतारा और एक छोटी दरी बिछाकर उस पर बैठाया। मुझे सिखलाया कि जब ख़लीफ़ा आवें तब तुम खड़ी होकर उनसे मिलना। जब वह आए मैं खड़ी होकर मिली। उसी समय उनकी स्त्री सुलतानम भी आई। मैंने नहीं जानकर चाहा कि उठूँ पर ख़लीफ़ा ने यह बात कही कि यह तुम्हारी पुरानी दासी है इसके लिये खड़े होने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे पिता ने इस पुराने दास की प्रतिष्ठा बढ़ाई कि उसके लिये ऐसी आज्ञा[1] दी है, वही बहुत है, दासों का क्या अधिकार है ?

ख़लीफ़ा की भेंट से मैंने पाँच सहस्र शाहरुख़ी और पाँच घोड़े लिए और उनकी स्त्री सुलतानम ने तीन सहस्र शाहरुख़ी और तीन घोड़े भेंट देकर कहा कि जलपान तैयार है यदि ग्रहण करिए तो दासों की प्रतिष्ठा बढ़ेगी। मैंने मान लिया। अच्छे स्थान पर बड़ी और ऊँची जगह बनाकर उसपर लाल रंग का बिछौना बिछाया गया था जिसके बीच में गुजराती ज़रबफ़्त लगा था। कपड़े और ज़रबफ़्त के छ शामिआने लगे थे जो प्रत्येक एक एक रंग के थे और चारों ओर बराबर क़नात तनी थी जिसके सब डंडे रंगीन थे। मैं ख़लीफ़ा के स्थान पर बैठी। भोजन में पचास भेड़ें भुनी हुई, रोटी, शरबत और बहुत मेवे थे। अंत में खा चुकने

(१) खड़ी होकर भेंट करने की।

पर मैं पालकी पर चढ़कर अपने पिता बादशाह से जाकर मिली और पाँव पर गिर पड़ी। बादशाह ने बहुत कुछ पूछ ताछ की और कुछ देर तक पास बिठाया जिससे इस तुच्छ जीव को इतनी प्रसन्नता हुई कि उससे बढ़कर प्रसन्नता न होगी।

आगरे पहुँचने के अनंतर तीन महीने बीत चुके थे जब कि बादशाह धौलपुर गए और माहम बेगम तथा मैं धौलपुर की सैर को साथ गई। धौलपुर में एक बावली एक पत्थर के टुकड़े में दस गज़ लंबी और चौड़ी बनवाई थी। वहाँ से सीकरी गए जहाँ तालाब के बीच में ऊँचा स्थान बनने की आज्ञा दी। जिस समय वह बन गया नाव पर बैठकर वहाँ जाते, सैर करते और बैठते थे। यह अबतक वर्तमान है। सीकरी में एक बाग़ में चौखंडी बनवाई थी जिसमें तौरख़ाना[१] बनवा कर उसमें वे बैठते और क़ुरान[२] लिखते थे।

मैं और अफ़ग़ानी आग़ाचा आगे पीछे बैठी हुई थीं कि बेगम साहब: निमाज़ पढ़ने को चली गईं। मैंने अफ़ग़ानी आग़ाचा से कहा कि मेरा हाथ खींचो। उसने खींचा और मेरा हाथ उखड़ गया और मैं पीड़ा से रोने लगी। अंत में नस बैठानेवाले को लाकर मेरा हाथ बंधवाया और आगरे चले।

---

(१) तौर का अर्थ, तुर्की भाषा में जाली और मछली फँसाने का जाल है। तौरख़ानः—जालीदार घर या मसहरी।

(२) मुसहिफ़ क़ुरान को कहते हैं। मिसेज़ बेवरिज ने तुजुके-बाबरी भूल से लिख दिया है।

आगरे में पहुँचे थे कि समाचार आया कि बेगमें काबुल से आरही हैं। आक: जानम जो मेरी बड़ी बूआ और पिता की बड़ी बहिन थीं उनके स्वागत के लिये बादशाह नौग्राम तक गए। आक: जानम के साथ की कुल बेगमों ने उन्हींके स्थान पर बादशाह से भेंट की। यहीं प्रसन्नता मनाई, धन्यवाद देने के लिये प्रार्थनाएँ कीं और आगरे को चलीं। सब बेगमों को मकान दिए और कुछ दिन के अनंतर ज़रअफ़शाँ बाग़ की सैर को गए।

उस बाग़ में स्नानघर था जिसको देखकर कहा कि राज्य और राजत्व से मेरा मन भर गया। अब मैं इस बाग़ में एकांतवास करूँगा। मेरी सेवा के लिये ताहिर आफ़ताबची बहुत है और राज्य मैं हुमायूँ को देदूँगा। उस समय आकाम बेगम और सब संतानों ने रो गाकर कहा कि ईश्वर आपको राजगद्दी पर बहुत बहुत वर्ष तक अपनी रक्षा में रखे और सब संतान आपके चरण में बूढ़े हों।

कुछ दिन पर आलोर मिर्ज़ा मांदे हुए जिनकी मांदगी से पेट की पीड़ा बढ़ गई। हकीमों ने बहुत कुछ दवा की पर रोग बढ़ता ही गया। अंत में इसी रोग से नश्वर संसार से अमरलोक चले गए। बादशाह ने बहुत दु:ख और शोक किया। आलोर मिर्ज़ा की माता दिलदार बेगम अपने पुत्र के शोक में जो संसार में अद्वितीय और एक ही था पागल होगई। जब शोक सीमा के बाहर हो गया तब बादशाह ने आकाम और दूसरी बेगमों से

कहा कि चलो धौलपुर सैर करने चलें। स्वयं नाव पर बैठकर आराम से नदी पारकर धौलपुर चले। बेगमों ने भी चाहा कि नाव पर बैठकर जल से जावें।

इसी समय दिल्ली से मौलाना मुहम्मद फर्ग़ली का प्रार्थना-पत्र आया जिसमें लिखा था कि हुमायूँ मिर्ज़ा माँदे हैं, हाल विचित्र है। बेगम साहब यह समाचार सुनतेही बहुत जल्दी आवें क्योंकि मिर्ज़ा बहुत घबड़ाए हैं। बेगम साहब यह समाचार सुनतेही ऐसा घबड़ा गईं जैसे प्यासा पानी से दूर हो, और दिल्ली को चल दीं। मथुरा में भेंट हुई और जैसा सुना था उससे दसगुना निर्बल और सुस्त अपनी संसारदर्शी आँखों से देखा। वहाँ से दोनों माता और पुत्र ईसा और मरियम की नाईं आगरे को चले।

जब वे आगरे पहुँचे तब मैंने अपनी बहिनों के साथ उन देव योग्य स्वभाववाले बादशाह से जाकर भेंट की। पर सुस्ती पहले से अधिक होती गई थी इससे जब होश में आते थे तब हम लोगों को पूछते और कहते कि बहिनें तुम अच्छी आईं, आओ हम तुम एक दूसरे से मिलें क्योंकि हम अभी नहीं मिले हैं। तीन बार उन्होंने यह बात स्वयं कही। जब बादशाह आए और मिले तब इनको देखतेही उनका चमकता हुआ मुख शोक से उतर गया और उनकी घबड़ाहट बढ़ती ही गई।

उस समय बेगम साहब ने कहा कि हमारे पुत्र को आप भुला दीजिए। आप बादशाह हैं, आपको क्या दुःख है?

आपको अन्य कई पुत्र भी हैं। हमें इस कारण दुःख है कि हमको केवल यही[1] एक पुत्र है। बादशाह ने उत्तर दिया कि माहम! यद्यपि और पुत्र हैं पर तुम्हारे हुमायूँ के समान हमें किसी पर भी प्रेम नहीं है। संसार में अद्वितीय और कार्य्य-शालियों में अपना बराबर नहीं रखनेवाले प्रिय पुत्र हुमायूँ के ही लिये हम इस राज्य और संसार की इच्छा रखते हैं, दूसरों के लिये नहीं।

जिस समय यह बीमार थे बादशाह ने हज़रत मुर्तज़ाअली करमुल्ला की परिक्रमा आरंभ की। यह परिक्रमा बुधवार से करते हैं पर इन्होंने दुःख और घबड़ाहट से मंगल ही को आरंभ कर दी। हवा बहुत गरम थी और मन और हृदय इनका घबड़ाया हुआ था। परिक्रमा में ही प्रार्थना की कि हे परमेश्वर! यदि प्राण के बदले प्राण दिया जाता हो तब मैं, बाबर, अपनी अवस्था और प्राण हुमायूं को देता हूँ[2]। उसी दिन बादशाह फ़िर्दौसमकानी मांदे होगए और हुमायूँ बादशाह ने स्नान कर बाहर आ दरबार किया। बादशाह पिता को मांदे हो जाने के कारण भीतर लेगए।

---

(१) माहम बेगम के और सब पुत्र बचपन ही में आते रहे थे।

(२) इसी अवसर पर प्रस्ताव हुआ था कि बड़ा हीरा (कोहेनूर या वह हीरा जो हुमायूँ को ग्वालियर में मिला था) हुमायूँ पर निछावर किया जाय। मिसेज़ बेवरीज ने इस अंश का ठीक अर्थ नहीं समझा है इससे उन्हें अनुवाद करने में गड़बड़ मालूम हुआ है।

दो तीन मास तक वे पलंग पर ही रहे और इस बीच मिर्ज़ा हुमायूं कालिंजर चले गए थे। जब बादशाह का रोग बढ़ा तब हुमायूँ बादशाह को बुलाने के लिये मनुष्य भेजा गया। झट पहुँचे और जब जाकर बादशाह की सेवा की तब उन्हें बहुत सुस्त देखा। हुमायूँ संताप के मारे बड़े दुखित हुए और दासों से कहने लगे कि एकबारगी इनका ऐसा हाल क्यों हो गया? वैद्यों और हकीमों को बुलवाकर कहा कि मैं इनको स्वस्थ छोड़कर गया था, एकाएक यह क्या हो गया? उन लोगों ने कुछ कह दिया।

पिता बादशाह हर समय पूछा करते थे कि हिंदाल[1] कहाँ है और क्या करता है? उसी समय एक ने आकर कहा कि मीर ख़ुर्द बेग[2] के पुत्र मीर बर्दी बेग ने सलाम कहलाया है। उसी समय बड़े घबड़ाहट से बादशाह ने बुलवाकर पूछा कि हिंदाल कहाँ है? कब आवेगा? प्रतीक्षा ने कैसा दुःख दिया। मीर बर्दी ने कहा कि भाग्यवान् शाहज़ादा दिल्ली पहुँच गया है आज या कल सेवा में आवेगा। उसी समय बादशाह ने मीर बर्दी बेग से कहा कि अरे! अभागे हमने सुना है कि तेरी बहिन

---

(१) मूल ग्रंथ मे हुमायूं लिख गया है जो अशुद्ध है।

(२) हिंदाल के जन्म से ही यह उसका अतालीक़ नियत था (१५१९–३० ई०)। यह बाबर की पाकशाला का दारोग़ा था जिसका पुत्र ख़्वाजः ताहिर मुहम्मद अकबर का मीर फराग़त और दोहजारी मंसबदार था। मीर बर्दी (खिलवाड़ी) ही स्यात् इसका नाम लड़कपन में रहा हो।

का काबुल में और तेरा लाहौर[1] में विवाह हुआ है। इन्हीं विवाहों के कारण मेरे पुत्र को जल्दी नहीं लाए और प्रतीक्षा हद के बाहर होगई। फिर पूछा कि हिंदाल कितना बड़ा हुआ और कैसा है? मीर बर्दी बेग ने जो मिर्ज़ा का ही जामा पहिरे हुए था कहा कि यह जामा शाहज़ादः का है जो मुझे कृपया दिया है। बादशाह ने पास बुलवाया कि देखूं हिंदाल का डोल डौल कितना है? वे हर समय कहते कि सहस्र शोक है कि हिंदाल को नहीं देखा। हर एक से जो आता था पूछते थे कि हिंदाल कब आवेगा?

रोगावस्था ही में बेगम साहब को आज्ञा दी कि गुलरंग बेगम और गुलचेहरः बेगम का विवाह करना चाहिए। जब कि बूआजी[2] साहबा आवें उन्हें जता देना कि बादशाह कहते हैं कि उनकी इच्छा है कि गुलरंग का ईसन तैमूर सुलतान से और गुलचेहरः का तोख़्ता बोग़ा सुलतान से विवाह कर दें। आका जानम मुस्कराती हुई आईं। उनसे कहा कि बादशाह ने ऐसे कहा है कि उनकी ऐसी इच्छा है आगे जैसी

(१) हिंदाल के साथ काबुल से आते समय रास्ते में यह काम हुआ था।

(२) अम्मः का अर्थ पिता की बहिन है जिसे बूआ कहते हैं। और माता के भाई की स्त्री को भी अम्मः कहते हैं जिसे मामी कहा जाता है। अंग्रेजी अनुवादिका ने भूल से बहिन अर्थ लेकर ख़ानज़ादः बेगम लिख दिया है। जीउ शब्द प्रेम और आदर सूचक है।

उनकी इच्छा हो वैसा होवे। बेगम आका जानम ने भी कहा कि ईश्वर शुभ और सुफल करे और बादशाह का विचार बहुत ठीक है। स्वयं जीजम,[1] बदीउज्जमाल बेगम और आक़ बेगम दोनों बूआएँ दालान में गईं। सफा स्थान पर बिछौना बिछवाया और साइत देख कर माहम बेगम के ननचः ने दोनों सुलतानों को घुटने बल बिठाकर दामादी में ले लिया।

इसी समय बादशाह के पेट की पीड़ा बढ़ गई और जब हुमायूँ बादशाह ने पिता का बुरा हाल देखा तब फिर वे घबड़ाने लगे। हकीमों को बुलाकर कहा कि देखो और रोग की ओषधि दो। हकीमों ने इकट्ठे होकर कहा कि हम लोगों का दुर्भाग्य है कि ओषधि काम नहीं देती, आशा है कि परमेश्वर अपने गुप्त कोष से कोई दवा जल्दी देवें। उसी समय जब नाड़ी देखी तब हकीमों ने कहा कि उस विष के चिन्ह हैं जिसे सुलतान इब्राहीम

(१) मिसेज़ बेवरीज़ ने इस शब्द पर टिप्पणी करते लिखा है कि इस तुर्की शब्द के अर्थ करने में कठिनाई पड़ती है। उर्दू लिपि के कारण उसे जीजम, चीजम, चीचम, जीचम आदि पढ़ सकते हैं। वस्तुतः यह शब्द जीजम है जिसे तुर्की में चीचम पढ़ेंगे और इसका अर्थ बड़ी बहिन है जिससे हिंदी का जीजी शब्द निकला है। यहाँ यह शब्द आका जानम अर्थात् ख़ानज़ादा बेगम के लिए आया है जो बाबर की बड़ी बहिन थीं।

(२) बाबर के मामा अहमदख़ाँ का नवाँ पुत्र और तोख़्ता बोग़ा दसवाँ पुत्र था। ये गुलबदन बेगम के पति खिज़्र ख़्वाजा ख़ाँ के चाचा लगते थे।

की माता[1] ने दिया था। वह इस प्रकार हुआ कि उस अभागी राक्षसी ने अपने दासी के हाथ में एक तोला विष दिया था कि ले जाकर अहमद चाशनीगीर को दो और कहो कि किसी प्रकार बादशाह के भोजन में डाल दे। उसको बहुत देने का प्रण किया था। यद्यपि बादशाह उस अभागी राक्षसी को माता कहते थे, मकान और जागीर देकर उस पर पूर्ण कृपा रखते थे और उससे कहा था कि मुझे सुलतान इब्राहीम के स्थान पर समझे तिसपर भी उन कृपाओं को नहीं माना क्योंकि वह जाति मूर्ख-तापूर्ण है। प्रसिद्ध है (मिसरा) सब वस्तु अपनी असलिअत को लौटती है। अंत में वह विष लेजाकर उस रसोईदार को दिया गया जिसे ईश्वर ने अंधा और बहिरा बना दिया था और वह रोटी पर फैलाया गया था, इसीसे थोड़ा खाया गया था। पर रोग की जड़ वही थी जिससे वे दिन पर दिन दुर्बल और सुस्त हुए जाते थे, माँदगी बढ़ती जाती थी और मुख भी बदल गया था। दूसरे दिन[2] सब अमीरों को बुलवाकर कहा कि बहुत वर्ष हुए मेरी इच्छा थी कि हुमायूँ मिर्ज़ा को बादशाही देकर मैं स्वयं ज़रअफ़शाँ बाग़ में एकांतवास करूँ। ईश्वरी कृपा से

(१) बूआ बेगम—यह उस सुल्तान इब्राहीम लोदी की माता थी जिसे बाबर ने पानीपत के युद्ध में परास्त किया था। यह सिकंदर लोदी की स्त्री थी। बाबर को विष देने के कारण इसका सर्वस्व छीन कर बादशाह ने इसे काबुल भेजा पर रास्ते ही में सिंध नदी में कूद कर इसने आत्महत्या कर ली। इसका पूरा वर्णन इक़बाल नामा में दिया है।

(२) हुमायूँ के आने के अनंतर।

वही हुआ पर यह नहीं कि मैं स्वस्थ अवस्था में ऐसा करता। अब इस रोग से दुखित होकर वसीअत करता हूँ कि सब हुमायूँ को हमारे स्थान पर समझें, उसका भला चाहने में कमी न करें और उससे एकमत होकर रहें। ईश्वर से आशा रखता हूँ कि हुमायूं भी सबसे सुव्यवहार करेंगे। हुमायूँ! तुमको, तुम्हारे भाइयों, सब संबंधियों और अपने और तुम्हारे मनुष्यों को ईश्वर को सौंपता हूँ और इन सबको तुम्हें सौंपता हूँ। इन बातों से सभी लोग रोने पीटने लगे और बादशाह की भी आँखों में आँसू भर आए।

इस बात को हरमवालियों और भीतर के आदमियों ने भी सुना। सब कोई रोने पीटने में लग गए। तीन दिन के अनंतर वे इस नश्वर संसार से अमरलोक चले गए। ५ जमादिउल्-अव्वल सोमवार सन् ६३७ हि० (२६ दिसंबर सन १५३० ई०) को मृत्यु हुई।

यह बहाना करके कि हकीम लोग देखने आते हैं हमारी बूआ और माताओं को बाहर लिवा गए। सब बेगमों और माताओं को बड़े गृह[१] में ले गए। पुत्रों और आपसवालों आदि के लिये यह शोक का दिन था और वे रोने पीटने में लग गए। हर एक ने कोने में छिपकर दिन व्यतीत किया।

यह घटना छिपा रखी गई। अंत में आराइश खाँ नामक

(१) अपने अपने स्थानों पर न जाकर सबने एकही स्थान पर शोक मनाया।

हिंदुस्तान के एक अमीर ने प्रार्थना की कि इस बात को छिपाना ठीक नहीं है क्योंकि हिंदुस्तान में यह चाल है कि जब बादशाहों की मृत्यु होती है तब बाज़ारवाले लूट मचाते हैं। स्यात् मुग़लों के अनजान में घरों और महलों में घुसकर लूट मचावें। यह ठीक होगा कि एक आदमी को लाल वस्त्र पहिरा कर हाथी पर बैठा मुनादी की जाय कि बाबर बादशाह दरवेश हो गए हैं और राज्य हुमायूँ बादशाह को दे गए हैं। हुमायूँ बादशाह ने आज्ञा दी कि ऐसा हो। ढिंढोरा होतेही प्रजा को संतोष हो गया और सबने उनकी बढ़ती के लिए प्रार्थना की। उसी महीने की ९ तारीख़ शुक्रवार[1] को हुमायूँ बादशाह गद्दी पर बैठे और कुल संसार ने मुबारकबादी दी।

इसके अनंतर माताओं, बहिनों और आपसवालों से मिलकर और समझाकर उनका शोक निवारण किया और आज्ञा दी कि हर एक मनुष्य अपने मंसब, पद, जागीर और स्थान पर नियत रहे और पहले के अनुसार अपना कार्य्य करता रहे।

उसी दिन मिर्ज़ा हिंदाल काबुल से आकर बादशाह से मिले। उस पर कृपाएं कीं और बहुत प्रसन्न हुए। पिता के कोष से बहुत सी वस्तु मिर्ज़ा हिंदाल को दी।

---

(१) ५ जमादिउल्‌अव्वल सोमवार को यदि २६ दिसंबर था तो ९ जमादिउल्‌अव्वल शुक्रवार को ३० दिसंबर होना चाहिए पर अंग्रेजी अनुवादिका ने २९ दिसंबर दिया है।

बादशाह पिता की मृत्यु के उपरांत उनके मक़बरे पर पवित्रता के समय में पहिला जमघट[1] हुआ और मुहम्मद अली कोतवाल[2] को मक़बरे का रक्षक बनाया गया। साठ अच्छे पढ़ने और आवाज़वाले विद्वान हाफ़िज़ों[3] को नियुक्त किया कि पाँचों समय की निमाज़ इकट्ठे होकर पढ़ें, क़ुरान पूरा करें और बादशाह फ़िर्दौसमकानी की आत्मा के लिए फ़ातिहा पढ़ें। सीकरी जो अब फ़तहपुर के नाम से प्रसिद्ध है वह कुल (अर्थात् उसकी कुल आय) और बिआना से पाँच लाख मक़बरे के विद्वानों, हाफ़िज़ों आदि के व्यय के लिए नियत किया गया। माहम बेगम ने दो समय भोजन देना ठीक किया—सवेरे एक बैल, दो भेंड़ और पाँच बकरी और दूसरी निमाज़ के समय पाँच बकरी। ढाई वर्ष तक यह जीवित रहीं और दोनों समय अपनी जागीर से मक़बरे के लिये यह भोज देती रहीं।

जब तक माहम बेगम जीवित थीं उन्हींके गृह पर मैं बादशाह से मिलती थी। जब उनका स्वास्थ्य बिगड़ा तब मुझसे कहा कि बड़ी कठिनाई होगी कि मेरे मृत्यु के उपरांत बादशाह (बाबर) की लड़कियाँ अपने भाई को गुलबर्ग बीबी के गृह में

(१) मूल का मार्का शब्द अर्क से बना है जिसका अर्थ मिलना, कनेठी देना और छीलना है। युद्ध में सैनिक लोग मिलते हैं इससे मार्का का अर्थ युद्ध स्थल भी किया गया है। मनुष्यों के हर प्रकार के समूह होने को भी मार्का कहते हैं।

(२) मूल के असस का अर्थ नगर-रक्षक अर्थात् कोतवाल है।

(३) क़ुरान को कंठाग्र रखनेवाले हाफ़िज कहलाते हैं।

देखेंगी। बेगम साहब की यह बात मानों बादशाह के हृदय में ही थी कि जबतक हिंदुस्तान में रहे सर्वदा हमारे गृह पर आकर हमलोगों से मिलते और असीम कृपा और स्नेह करते। मासूमा सुलतान बेगम, गुलचेहरः बेगम और गुलरंग बेगम आदि सब बेगमें विवाहिता थीं इससे बादशाह मेरे गृह पर आते थे जहां वे आकर उनसे भेंट करती थीं। अर्थात् पिता और बेगम साहब की मृत्यु[1] पर इस दुखी पर ऐसी कृपा की और असीम प्रेम दिखलाया कि अपनी अनाथता और अनाश्रयता भूल गई।

फ़िर्दौसमकानी की मृत्यु के अनंतर दस वर्ष[2] तक जिन्नत आशिआनी हिंदुस्तान में रहे। कुल प्रजा शांति, सुख और आज्ञा में रही[3]। फ़िर्दौसमकानी की मृत्यु के छ महीने बाद बब्बन और बायज़ीद[4] गौड़ की ओर से आगे बढ़े। यह समाचार सुनतेही बादशाह आगरे से उधर चले और बब्बन और

(१) माहम बेगम की मृत्यु के समय गुलबदन बेगम की अवस्था लगभग आठ वर्ष की थी और जब वह तीन वर्ष की थी तभी गोद ली गई थी।

(२) चौसा युद्ध सन् १५३९ ई० में हुआ था इससे राजत्व काल ९ वर्ष ही है यद्यपि वह सन १५४२ ई० में भारत के बाहर निकले थे।

(३) अपने भाई के राजत्व का वृत्तांत बढ़ाकर लिखना स्वभाव के अनुसार ही है। तिसपर भी ठीक ठीक घटनाएं ग्रंथ में देदी हैं।

(४) बब्बन और बायजीद दो नामी अफग़ान सरदार महमूद लोदी

बायज़ीद को परास्त कर[1] चुनार आए[2] जिसे लेकर आगरे पहुँचे।

माहम बेगम की वहुत इच्छा थी कि हुमायूँ के पुत्र को देखूँ। जहाँ सुंदर और भली लड़की होती बादशाह की सेवा में लगा देती थीं। खदंग चोबदार की पुत्री मेव:जान मेरे दासत्व में थी। बादशाह फ़िर्दौसमकानी की मृत्यु के उपरांत एक दिन उन्होंने स्वयं कहा कि हुमायूँ, मेव:जान बुरी नहीं है अपने दासत्व में क्यों नहीं ले लेते। इस कथनानुसार उसी रात्रि को हुमायूँ बादशाह ने उससे विवाह कर लिया। तीन दिन के अनंतर बेगा बेगम[3] काबुल से आईं और गर्भवती हो गईं। ठीक

के साथ पूर्वी प्रांतों पर चढ़ आए थे, जब कि हुमायूँ कालिंजर विजय कर चुका था। वहीं से वह जौनपुर की ओर बढ़ा था।

(१) यह युद्ध ९३७ हि० (१५३१ ई०) में गोमती नदी के किनारे दौरा में हुआ था।

(२) प्रसिद्ध शेरखां सूरी के पुत्र जलालखां के अधीन था। चार मास के घेरे पर ९३९ हि० (१५३२ ई०) में उसने अधीनता स्वीकार कर ली।

(३) बेगा (हाजी) बेगम बेगचिक मुग़ल—यादगार बेग की पुत्री और हुमायूँ की ममेरी बहिन थी जिससे उसने विवाह किया। सन् १५२८ ई० में प्रथम पुत्र अलअमान का जन्म हुआ जब हुमायूँ बदख़्शां में था। बाबर ने जो पत्र इस समय लिखा था उसे अपनी पुस्तक में दिया है। अलअमान बचपन ही में मर गया। दूसरी संतान यही अक़ीक़: बेगम थी जो चौसा युद्ध में खोगई। बेगा बेगम ने हुमायूँ को उलाहना दिया था जिसका वर्णन इस ग्रंथ में आया है। हुमायूँ के साथ वह बंगाल

समय[1] पर पुत्री हुई और उसका अक़ीक़: बेगम नाम रखा गया। माहम बेगम से मेव:जान ने कहा कि मैं भी गर्भवती हूँ। माहम बेगम ने दो प्रकार के यराक़[2] तैयार किए और कहा कि जिसे पुत्र होगा उसे अच्छे प्रकार का दूँगी। उनको बँधवा दिया और

गई थी जहां इसकी बहिन, ज़ाहिद बेग की स्त्री भी साथ थी। चौसा युद्ध में यह भी पकड़ी गई थी पर शेरशाह ने प्रतिष्ठा के साथ अपने सेनापति ख़वास ख़ाँ की रक्षा में इसे हुमायूँ के पास भेज दिया। कब लौटाया गया ज्ञात नहीं पर सन् १५४५ ई० में यह काबुल में थी। हुमायूँ के हिंदुस्तान पर फिर अधिकार कर लेने के बाद सन् १५५७ ई० में सब बेगमों के साथ यह भी भारत आई। दिल्ली के पास पति का मक़बरा बनवाकर बराबर वहीं रहती थी।

अकबर इसका माता के समान सम्मान करता था। १५६४—५ ई० में यह हज्ज को गई और तीन वर्ष बाद लौटीं। इतिहासों में हाजी बेगम नाम लिखा है जिससे जान पड़ता है कि इसने कई बार हज्ज किया था। सन् १५८१ में गुलबदन बेगम के हज्ज से लौटने के पहले सत्तर वर्ष की अवस्था में इसकी मृत्यु हुई। अबुलफ़ज़ल लिखता है कि इसका कार्य्य क़ासिम अली खां देखता था और बीमारी में अकबर उसे देखने गए थे। एक बार पहले भी सन् १५७४ ई० में अकबर से इन्होंने भेंट की थी।

(१) मूल ग्रंथ में एक वर्ष लिखा है पर वैसा अर्थ करना ठीक नहीं है। शायद भारत में आने के एक वर्ष बाद पुत्री हुई हो।

(२) यराक़ सैनिकों के शस्त्रादि को कहते हैं जैसे भाला, तलवार, तीर, कमान इत्यादि। इस शब्द का अर्थ सामान भी किया गया है।

सोने चाँदी के बदाम और अखरोट बनवाए। सर्दारी सामान[1] भी तैयार करवाया था और प्रसन्न थीं कि स्यात् इनमें से एक को पुत्र होवे। प्रतीक्षा करती थीं कि बेगा बेगम को अक़ीक़: बेगम पैदा हुई। अब मेव:जान की प्रतीक्षा करने लगीं पर दस महीने बीत गए और ग्यारहवाँ भी बीत चला। मेव:जान ने कहा कि मेरी मौसी उलुग़ बेग मिर्ज़ा की स्त्री थीं जिसे बारह महीने पर पुत्र प्रसव हुआ था और मैं भी स्यात् उसीके ऐसी हूँ। ख़ेमे सिलवाए गए और तोशकें भरवाई गईं। अंत में मालूम हुआ कि वह झूठी है।

बादशाह जो चुनार को गए थे सुख और प्रसन्नता के साथ लौट आए। माहम बेगम ने बड़ी मजलिस की और सब बाज़ार सजाए गए। इसके पहले बाज़ारवाले ही सजावट करते थे। इन्होंने प्रजा और सैनिकों को भी आज्ञा दी कि अपने स्थानों और गृहों को सजावें। इसके अनंतर हिंदुस्तान में नगर की सजावट प्रचलित होगई।

जड़ाऊ तख़्त पर जिसपर चार सीढ़ियों से चढ़ते थे कारचोबी चंदवा लगा था और कारचोबी गद्दी की और तकिया रखी थी। बड़े ख़ेमों[2] का कपड़ा भीतरी ओर विलायती

---

(१) मूल में यराक़े अलक़ान के स्थान पर यराक़े यलक़ान लिखा गया है जिसका अर्थ क़ान अर्थात् सर्दार का सामान है।

(२) ख़र और बार का अर्थ बड़ा है और गाह का अर्थ खेमा है। ख़रगाह उस बड़े ख़ेमे को कहते हैं जिसमें ख़ुशी मनाई जाती या जलसा किया जाता है।

ज़रवफ़्त का था और बाहरी ओर पुर्तगाली कपड़ा था। इन ख़ेमों के डंडों पर सोने का मुलम्मा किया हुआ था और बहुत अच्छा लगता था। ख़ेमे की झालर और परदा गुजराती कामदानी कपड़े का था। गुलाबजल[1] का कंटर, शमःदान, गिलास, गुलाबपाश आदि सोने और जड़ाव के बनवाए गए। इस सब सामान की तैयारी से मजलिस[2] बड़ी अच्छी तरह हुई।

१२ ऊँट, १२ खच्चर, ७० तेज़ घोड़े, १०० बोझ ढोनेवाले घोड़े (भेंट किए)। सात हज़ार मनुष्यों को अच्छी ख़िलअत मिली और कई दिन ख़ुशी रही।

उसी समय सुना कि मुहम्मद ज़माँ मिर्ज़ा[3] ने हाजी मुहम्मद खाँ कोकी के पिता को मार डाला है और विद्रोही होने की इच्छा रखता है। बादशाह ने उन लोगों[4] को बुलाने के लिये आदमी भेजे और उन्हें पकड़वाकर बिआना में यादगार मामा को सौंपा, पर उसीके आदमियों ने मिलकर

(१) जुलाब का अर्थ गुलाब या गुलकंद है इससे जुलाबजल का अर्थ गुलाब जल ही यहाँ है।

(२) यह मजलिस हुमायूँ की गद्दी के एक वर्ष बाद १९ दिसंबर सन् १५३१ ई० को हुई थी। निज़ामुद्दीन अहमद लिखता है कि बारह सहस्र ख़िलअतें बँटी थीं जिनमें दो सहस्र ख़ास थीं।

(३) बदीउ़ज़्ज़माँ का पुत्र और सुलतान हुसेन मिर्ज़ा बैक़रा का पौत्र था। इसका विवाह बाबर की पुत्री मासूमा बेगम से हुआ था। यह चौसा युद्ध में गंगा जी में डूब मरा था।

(४) सब विद्रोहियों के नाम आगे दिए हैं।

मुहम्मद ज़माँ को भगा दिया। उसी समय सुलतान मुहम्मद मिर्ज़ा[१] और नै.खूब सुलतान मिर्ज़ा[२] के लिये आज्ञा हुई कि दोनों की आँखों में सलाई फेर दी जाय। नै.खूब अंधा होगया और सुलतान मुहम्मद की आँखों में जिसने सलाई फेरी उसने आँखों पर चोट नहीं पहुँचाई। कुछ दिन बाद मुहम्मद ज़माँ मिर्ज़ा और मुहम्मद सुलतान मिर्ज़ा अपने पुत्रों उलुग मिर्ज़ा और शाह मिर्ज़ा के साथ भाग गए[३]। ये लोग कुछ वर्ष भारत में रहे और सदा विद्रोह मचाते रहे।

बब्बन और बायज़ीद के युद्ध से जब बादशाह आए तब आगरे में लगभग एक वर्ष रहे और (इसके अनंतर) बेगम से कहा कि आजकल जी नहीं लगता यदि आज्ञा हो तो आप के साथ सैर को ग्वालिअर[४] जावें। बेगम साहब, आक़म मेरी माता, बहिनें मासूमः सुलतान बेगम जिसे हम माह चिचः कहती थीं और गुलरंग बेगम जिसे हम गुलचिचः कहती थीं सब ग्वालिअर में बादशाह की चाचियों के पास ठहरीं।

---

(१) सुलतान हुसेन मिर्ज़ा का नाती था और मुहम्मद ज़माँ इसका ममेरा भाई था।

(२) नै.खूब और वली.खूब दोनों नाम इतिहास में मिलते हैं।

(३) भागकर सुलतान बहादुर गुजराती की शरण गए।

(४) इतिहासों से जाना जाता है कि ग्वालिअर का जाना बहादुर शाह को धमकाने के विचार से हुआ था। ख़ाविंद अमीर जाने का समय शाबान ९३९ हि० (फरवरी १५३३ ई०) निश्चित करता है।

गुलचेहर: बेगम अवध में थीं जब कि इनका पति तोख़्त: बोग़ा सुलतान ईश्वर की कृपा को पहुँचा (मर गया) और बेगम के अधीनस्थ मनुष्यों ने अवध से बादशाह को प्रार्थना-पत्र भेजा कि तोख़्त: बोग़ा सुलतान मर गये, अब बेगम के लिये क्या आज्ञा है। बादशाह ने छोटे मिर्ज़ा[1] को आज्ञा दी कि जाकर बेगम को आगरे लाओ, हम भी वहीं आते हैं।

उसी समय बेगम साहिब: ने कहा कि यदि आज्ञा हो तो बेगा बेगम और अक़ीक़: को बुलवाऊँ कि वे भी ग्वालिअर देख लें। नौकार और ख़्वाजा कबीर को भेजा कि बेगा बेगम और अक़ीक़: सुलतान बेगम को आगरे ले आवें। दो महीने ग्वालिअर में एक साथ बीत गए जिसके अनंतर आगरे को चले और शाबान[2] महीने में वहाँ पहुँच गए।

शव्वाल महीने में बेगम साहब: के पेट में पीड़ा उठी। उसी महीने की तेरह को सन ६४० हि० में इस नश्वर संसार से अमरलोक को चली गईं। सम्राट् पिता की संतानों को अनाथता का दुःख नया हुआ, विशेष कर मुझे जिसे उन्होंने

(१) मूल ग्रंथ में मीरज़ायचः नहीं मिर्ज़ाचः है जिसका अर्थ छोटा मिर्ज़ा है। मीरज़ायचः का अर्थ मुख्य ज्योतिषी है।

(२) शाबान ६३६ हि० (फरवरी १५३३ ई०) में ग्वालिअर गए, शव्वाल (एप्रिल) में आगरे लौटे, १३ शव्वाल (८ मई) को माहम बेगम की मृत्यु हुई और ६४० हि० (जुलाई १५३३ ई०) में दीनपनाह दुर्ग बनना आरंभ हुआ।

स्वयं पाला था। मुझको बड़ा दुख, घबड़ाहट और कष्ट था जिससे दिन रात रोने, चिल्लाने और शोक करने में बीतता था। बादशाह ने कई बार आकर दुःख और शोक निवारण करने के लिये समझाया और कृपाएँ कीं। दो वर्ष की थी जब बेगम साहब: ने मुझको अपने स्थान पर लाकर पालन किया और दस वर्ष की थी जब वे मरीं। एक वर्ष और उनके गृह पर रही।

जिस समय बादशाह धौलपुर की सैर को गए उस समय ग्यारहवें वर्ष में मैं माता के साथ थी। ग्वालिअर जाने और इमारतों के बनवाने के पहले यह हुआ था।

बेगम साहब: का चालीसा बीतने पर बादशाह दिल्ली गए और दीनपनाह दुर्ग[1] की नींव डाली और आगरे आए। आक:जान ने बादशाह से कहा कि मिर्ज़ा हिंदाल के विवाह की मजलिस कब करोगे? बादशाह ने कहा बिस्मिल्ला (अर्थात् आरंभ करो)। मिर्ज़ा हिंदाल के विवाह के समय बेगम साहब: जीती थीं पर सामान तैयार नहीं होने से मजलिस रुक गई थी। तब कहा कि तिलस्मी मजलिस का भी सामान तैयार है, पहले यह हो तब मिर्ज़ा हिंदाल की (मजलिस) होवे। बादशाह ने आक: जान से कहा कि बूआ साहब, आप क्या कहती हैं? उन्होंने कहा कि ईश्वर अच्छा और भला करे।

---

(१) ९४० हि० के मुहर्रम महीने के मध्य में साइत से हुमायूँ ने नींव डाली।

उस मजलिस-घर का विवरण जो नदी के तट पर बनाया गया था और जिसका नाम तिलस्मी-घर[1] रखा गया था।

अष्टकोणवाले बड़े गृह के बीच में आठ पहल का तालाब बना था जिसके मध्य में अष्टकोणी चबूतरा बना हुआ था और उस पर विलायती ग़लीचे बिछे हुए थे। युवकों, सुंदर युवतियों, सुंदर स्त्रियों, अच्छे सुरवाले गवैयों और पढ़नेवालों को आज्ञा दी कि तालाब (वाले चबूतरे) पर बैठें।

गृह के आँगन में जड़ाऊ तख़्त जिसे बेगम साहबः ने मजलिस में दिया था रखा गया और उसके आगे कारचोबो की तोशक बिछाई गई थी। बादशाह और आकःजान तख़्त के आगे की तोशक पर बैठ गए। आकःजान के दाहिने ओर उनकी बूआएँ, सुलतान अबूसईद मिर्ज़ा की पुत्रियाँ, बैठीं—

(१) फ़ख़्रजहाँ बेगम,

(२) बदीउज़्ज़माल बेगम,

(३) आक़ बेगम,

(४) सुलतानबख़्त बेगम,

(५) गौहरशाद बेगम, और

(६) ख़दीजा सुलतान बेगम।

---

(१) ऐसे गृह को जिसमें आश्चर्यजनक तमाशे हों तिलस्मी-घर कहते हैं। यह हुमायूँ की राजगद्दी की खुशी में हुआ था और ख़ाविंद अमीर ने अपने हुमायूँनामा में इसका पूरा विवरण दिया है।

दूसरी तोशक पर मेरी बूआएँ जो कि फ़िर्दौस-मकानी की बहिनें थीं बैठीं (इनके ये नाम थे)—

(७) शहरबानू बेगम[1] और

(८) यादगार सुलतान बेगम[2],

---

(१) शहर बानू बेगम—यह उमर शेख़ मिर्ज़ा और उम्मेद अंदजानी की पुत्री, बाबर की सौतेली बहिन और उनसे आठ वर्ष छोटी थी। यह नासिर और मेहरबानू की सहोदर बहिन, निज़ामुद्दीन अली ख़लीफ़ा के भाई जूनेद बर्लास की स्त्री और संजर मिर्ज़ा की माता थी। सन् १४९१ ई० में इसका जन्म हुआ था, १५३७–३८ ई० में यह विधवा हुई और १५४० ई० में इसकी मृत्यु हुई। अपने भतीजे यादगार नासिर के साथ सन् १५४० ई० में सिंध गई और जब वह कामराँ के पास भाग गया (शाह हुसेन अर्गून ने काम निकलने पर उस धोखेबाज़ को निकाल दिया था) तब कामराँ ने शाह हुसेन को लिखा कि बेगम को पुत्र सहित भेज दो। आवश्यक वस्तुओं के न रहने से रेगिस्थान पार करने में इसके बहुत साथी मर गए और यह भी कीटा में ज्वर से मर गई।

(२) यादगार सुलतान बेगम—यह उमर शेख़ मिर्ज़ा और आग़ा सुलतान आग़ाचः की पुत्री और बाबर की सौतेली बहिन थी। इसका पालन इसकी दादी ईसन दौलात् ने किया था। पिता की मृत्यु के बाद उत्पन्न होने के कारण यादगार नाम पड़ा। वह ९ जून सन् १४९४ ई० में मरा था। सन १५०३ ई० में शैबानी के अंदजान और अख़सी विजय कर लेने पर यह अब्दुल्लतीफ़ उज़बेग के हाथ क़ैद होगई। सन १५११ ई० में जब बाबर ने ख़तलान और हिसार विजय किया तब यह उसके पास लौट आसकी। विवाह के बारे में कुछ पता नहीं। यह और इसकी माता तिलस्मी मजलिस में थीं।

इसके अनंतर दाएँ ओर के दूसरे अतिथियों के नाम हैं।

(९) सुलतान हुसेन मिर्ज़ा की पुत्री आयशा सुलतान बेगम[१],

(१०) बादशाह की बूआ जैनब सुलतान बेगम की पुत्री उलुग़ बेगम,

(११) आयशा सुलतान बेगम,

(१२) बादशाह के चाचा सुलतान अहमद मिर्ज़ा की पुत्री सुलतानी बेगम,

(१३) बादशाह के चाचा सुलतान ख़लील मिर्ज़ा की पुत्री और कलाँख़ाँ बेगम की माता बेगा सुलतान बेगम[२],

(१४) माहम बेगम,

(१५) बादशाह के चाचा उलुग़बेग मिर्ज़ा काबुली की पुत्री बेगी बेगम,

(१६) सुलतान मसऊद मिर्ज़ा की पुत्री ख़ानज़ादा बेगम[३]

---

(१) आयशा सुल्तान बेगम—सुल्तान हुसेन मिर्ज़ा बैक़रा और ज़ुबैदः आग़ाचः (शैबानी सुलतानों के घराने) की पुत्री थी। इसका विवाह क़ासिम सुल्तान उज़बेग, शैबान सुल्तान, से हुआ जिससे क़ासिम हुसेन सुल्तान पुत्र हुआ। क़ासिम सुल्तान की मृत्यु पर उसके छोटे भाई बुरान सुल्तान ने उससे सगाई करली जिससे अब्दुल्ला सुल्तान पुत्र हुआ। यह सन् १५३१ ई॰ में चौसा में खो गई।

(२) अबू सईद की पोती और बाबर की चचेरी बहिन थी।

(३) ख़ानज़ादा बेगम बैक़रा—यद्यपि बाबर ने पायंदा मुहम्मद सुल॰ तान बेगम के किसी लड़की की सुल्तान मसऊद मिर्ज़ा के साथ विवाह होने की बात नहीं लिखी है परंतु गुलबदन बेगम के ऐसा होना लिखने से उसकी बात अवश्य मान्य है, क्योंकि ऐसे संबंधों का स्त्रियों को ही

जो बादशाह की बूआ पायंदा मुहम्मद सुलतान बेगम[1] की नतिनी थीं,

(१७) बदीउज्जमाल बेगम की पुत्री शाह ख़ानम,

(१८) आक़ बेगम की पुत्री ख़ान बेगम,

(१९) बादशाह के बड़े मामा सुलतान महमूद की पुत्री ज़ैनब सुलतान ख़ानम,

(२०) बड़े बादशाह के छोटे मामा सुलतान अहमदख़ाँ जो इलाचःख़ां के नाम से प्रसिद्ध था उसकी पुत्री मुहिब्ब सुलतान ख़ानम,

(२१) मिर्ज़ा हैदर की बहिन और बादशाह की मौसी की पुत्री ख़ानिश,

ध्यान अधिक रहता है। सुलतान मसऊद का पायंदा बेगम की द्वितीय पुत्री कीचक बेगम (पुकारने का नाम हो सकता है) पर बड़ा प्रेम था और यद्यपि पायंदा बेगम मसऊद से चिढ़ी हुई थीं पर किसी पुस्तक में इस विवाह के प्रतिकूल कुछ नहीं लिखा मिलता है। मसऊद के अंधा होने के अनंतर उसका विवाह सआदत बख़्श के साथ हुआ था। कीचक बेगम को तिलाक़ देने पर उसका विवाह मुल्ला ख़्वाजा के साथ हुआ था।

(१) पायंदा मुहम्मद सुलतान बेगम—अबू सईद मिर्ज़ा की पुत्री, बाबर की बूआ और सुलतान हुसेन बैक़रा की स्त्री थी जिसने इसकी बहिन को तिलाक़ देकर इससे विवाह किया था। हैदर मिर्ज़ा बैक़रा, आक़ बेगम, कीचक बेगम, बेगा बेगम और आग़ा बेगम की माँ थी। सन् १५०७-८ ई० में जब उज़बेगों ने ख़ुरासान ले लिया तब यह एराक़ गई जहाँ कष्ट से इसकी मृत्यु हुई।

(२२) बेगाकलाँ बेगम[1],

(२३) कीचक बेगम[2],

(२४) शाह बेगम[3] जो दिलशाद बेगम की माता और बादशाह की बूआ फ़ख़्रजहाँ की पुत्री थी,

(२५) कचकनः बेगम,

(२६) सुलतान बख़्त बेगम की पुत्री आफ़ाक़ बेगम[4],

(२७) बादशाह की बूआ मेहलीक बेगम,

(२८) शाद बेगम[5] जो सुलतान हुसेन मिर्ज़ा की नतिनी और माता की ओर से बादशाह की बूआ थी,

(२९) सुलतान हुसेन मिर्ज़ा की पोती और मुज़फ्फ़र मिर्ज़ा

---

(१) बेगा कलाँ बेगम—इसके बारे में ठीक वृत्तांत नहीं मालूम हुआ। सुलतान महमूद मिर्ज़ा और ख़ानज़ादा तर्मिज़ी की पुत्री, हैदर मिर्ज़ा बैक़रा की स्त्री और शाद बेगम की माँ बेगा बेगम मीरानशाही हो सकती हैं।

(२) कीचक बेगम—फ़ख़्रजहाँ बेगम मीरानशाही और मीर अलाउल् मुल्क तर्मिज़ी की पुत्री थी। ख़्वाजा मुईन अहरारी की स्त्री और मिर्ज़ा शरफ़ुद्दीन हुसेन की माँ थी।

(३) शाह बेगम—मीरअलाउल् मुल्क तर्मिज़ी की पुत्री और कीचक बेगम की बहिन थी।

(४) आफ़ाक़ बेगम—सुलतान अबू सईद मिर्ज़ा की नतिनी थी। पिता का नाम ज्ञात नहीं। बाबर ने लिखा है कि सुलतान बख़्त की एक पुत्री सन् १५२८ ई० के अक्तूबर में भारत आई थी और उसका नाम आदि गुलबदन बेगम ने लिखा है।

(५) शाद बेगम—सुलतान हुसेन मिर्ज़ा के पुत्र हैदर बैक़रा और बेगा बेगम मीरानशाही की पुत्री और आदिल सुलतान की स्त्री थी।

की पुत्री मेहरअंगेज़ बेगम[1]। (शाद बेगम और ये) बड़ी मित्र थीं, मर्दानः कपड़ा पहिरतीं, कई प्रकार के गुण जानती थीं जिनमें से धनुष का चिह्नः बनाना, चौगान खेलना, तीर चलाना और कई बाजे बजाना है,

(३०) गुल बेगम,

(३१) फ़ौक़ बेगम,

(३२) जान सुलतान बेगम,

(३३) अफ़रोज़ बानू बेगम,

(३४) आग़ा बेगम,

(३५) फ़ीरोज़ः बेगम,

(३६) बर्लास बेगम,

और भी बहुत बेगमें थीं जिनकी संख्या ९६ तक थी जो सब वेतनभोगी थीं और कुछ दूसरी भी थीं।

तिलस्मी मजलिस के अनंतर मिर्ज़ा हिंदाल की मजलिस हुई पूर्वोक्त बेगमों में से कई विलायत[2] चली गईं और कुछ जो उस मजलिस में थीं बहुधा दाहिने ही ओर बैठी थीं। हमारी[3] बेगमों में से—

---

(१) मेहरअंगेज़ बेगम—ख़दीजा बेगम की पुत्री थी। सन् १५०७ ई० के जून में जब शैबानीख़ाँ ने हिरात विजय किया तब उबैदुल्लाख़ाँ उज़बेग ने इससे विवाह कर लिया।

(२) काबुल आदि देश।

(३) नं० ३६ तक की बेगमें दूर की रहनेवाली थीं जो पहली मजलिस होने पर अपने अपने देश चली गईं। इसके अनंतर जिन बेगमों का

(३७) आग़ा सुलतान आग़ाचः[१], यादगार सुलतान बेगम की माता,

(३८) आतून मामा[२],

(३९) सलीमा,

(४०) सकीना,

(४१) बीबी हबीबः,

(४२) हनीफः बेगः,

बादशाह के बाएँ ओर कारचोबी की तोशक पर बैठी हुई स्त्रियाँ—

(४३) मासूमः सुलतान बेगम,

नाम आया है वे बादशाह के साथ रहनेवाली थीं जैसा कि गुलबदन बेगम के 'हमारी बेगमों' लिखने से ज्ञात होता है। इस सूची में दोनों मजलिसों में रहनेवाली बेगमों के नाम दिए गए हैं।

(१) आग़ा सुलतान आग़ाचः—उमर शेख़ मिर्ज़ा (मृत्यु सन् १४९४ ई०) की स्त्री और बाबर की सौतेली बहिन यादगार सुलतान की माँ थी। दोनों मजलिसों में थी।

(२) आतून मामा—सन् १५०१ ई० में बाबर ने एक आतून का नाम लिखा है जो समरकंद से काशग़र पैदल आई और पुरानी स्वामिनी कुतलक्-निगार ख़ानम से मिली। शैबानी की विजय पर उसके लिये घोड़ा नहीं होने के कारण वह वहीं छुट गई थी। गुलबदम बेगम ने भी मामा लिखा है जिससे यह वही पुरानी सेविका समझ पड़ती है। आतून उस स्त्री को कहते हैं जो लड़कियों को पढ़ना, लिखना, सीना और जाली निकालना सिखलाती है।

(४४) गुलरंग बेगम,

(४५) गुलचेहरः बेगम,

(४६) गुलबदन (बेगम), यह तुच्छ और दुखी,

(४७) अक़ीक़ः सुलतान बेगम,

(४८) आजम, जो हमारी माता दिलदार बेगम थीं,

(४९) गुलबर्ग बेगम[1],

(५०) बेगा बेगम,

(५१) माहम की ननचः,

(५२) सुलतानम, अमीर ख़लीफ़ा की स्त्री,

(५३) अलूश बेगम,

(५४) नाहिद बेगम,

(५५) ख़ुरशेद कोका और सम्राट् पिता के धाय-भाई की पुत्रियाँ,

(५६) अफ़ग़ानी आग़ाचः,

(५७) गुलनार आग़ः[2],

---

(१) गुलबर्ग बेगम—बाबर के ख़लीफ़ा निज़ामुद्दीन अली बर्लास की पुत्री और जूनेद बर्लास की भतीजी थी। स्यात् ख़लीफ़ा की स्त्री सुलतानम ही की पुत्री रही हो। सन् १५२४ ई० में पहले मीर शाह हुसेन अर्गून से विवाह किया पर सुखी नहीं होने पर तिलाक़ दे अलग होगई। चौसा युद्ध (१५३९ ई०) के कुछ पहिले हुमायूँ से विवाह किया। सिंध में साथ रही और वहाँ से सन् १५४३ ई० में सुलतानम के साथ मक्का गई। मृत्यु पर दिल्ली में गाड़ी गई।

(२) गुलनार आग़ः—बाबर के हरम में थी। शाह तहमास्प ने सन्

(५८) नाज़गुल आग़ाचः[1],

(५९) मख़दूम आग़:, हिंदू बेग की स्त्री,

(६०) फ़ातिमा सुलतान अंगः[2], रौशन कोका की माता,

(६१) फ़ख़्रुन्निसा अंगः, नदीम कोका[3] की माता और मिर्ज़ा कुली कोका की स्त्री,

(६२) मुहम्मदी कोकः की स्त्री,

(६३) मुवय्यद बेग की स्त्री,

बादशाह की धाय-बहिनें—

(६४) ख़ुर्शेद कोकः,

(६५) शर.फुन्निसा कोकः,

(६६) फ़तह कोकः,

१५२६ ई० में दो चर्किस दासियाँ (दूसरी का नाम नाज़गुल था) बादशाह को भेंट दी थीं उनमें से यह एक हो सकती है। यह हिंदाल की मजलिस में थी और हुमायूँ और उसके हरमवालियों के साथ रहती थी। सन १५७५ ई० में गुलबदन बेगम के साथ हज्ज को गई।

(१) नाज़गुल आग़ाचः—देखो नोट गुलनार आग़ः पर।

(२) फ़ातिमः सुलतान—ख़्वाजा मुअज़्ज़म की स्त्री ज़ोहरा भी इसी की पुत्री थी। बायज़ीद बिआत में इसे हुमायूँ के हरम का उर्दूबेगी लिखा है जिसका अर्थ ब्लैकमैन ने शस्त्रधारी स्त्री किया है। यह हिंदाल की मजलिस में थी और सन् १५४१ ई० में हुमायूँ की बीमारी में उसने उसकी सेवा की थी। विवाह संबंध में यह हरम बेगम के यहाँ गई और अकबर के समय में भी थी जब इसकी पुत्री को ख़्वाजः मुअज़्ज़म ने मार डाला था।

(३) इसी नदीम कोका की स्त्री माहम अनगः थी।

(६७) राबेश्रा सुलतान कोकः,

(६८) माहेलका कोकः,

हमारी धाएँ और धाय-बहिनें, बेगमों के साथवाली, अमीरों की स्त्रिएँ और साथवाली जो दाहिने हाथ की ओर थीं—

(६९) सलीमा बेगः,

(७०) बीबी नेकः,

(७१) ख़ानम आग़ः, ख़्वाजा अब्दुल्ला मुर्वारीद की पुत्री,

(७२) निगार आग़ः, मुग़ल बेग की माता,

(७३) नार सुलतान आग़ः,

(७४) आग़ः कोकः, मुनइमख़ाँ की स्त्री,

(७५) ऐश बेगः, मीर शाह हुसेन की पुत्री,

(७६) कीसक माहम,

(७७) काबुली माहम,

(७८) बेगी आग़ः,

(७९) ख़ानम आग़ः,

(८०) सआदत सुलतान आग़ः,

(८१) बीबी दौलत-बख़्त,[1]

(८२) नसीब आगः,

---

(१) दौलत-बख़्त हुमायूँ की गृहस्थी की कोई परिश्रमी और अच्छे दर्जे की सेविका थी जो हुमायूँ को स्वप्न में दिखलाई पड़ी थी और जिसके नाम पर बख़्तुन्निसा का नाम रखा गया था। बेगमों के फर्जा जाने के समय यह आगे गई थी और खान पान का सामान इसी के अधीन था।

(८३) ऐश काबुली,

और बहुत सी बेग: और आग़: जो अमीरों की स्त्रियां थीं इस ओर बैठीं और सब उस मजलिस में थीं।

तिलस्मी-घर इस प्रकार था। बड़ा अष्टकोणी गृह जिसमें मजलिस हुई उसीके सामने छोटा अठपहला घर भी था। दोनों बहुत प्रकार के सामान और सजावट से पूर्ण थे। बड़े अष्टकोणी मजलिस-घर में जड़ाऊ तख़्त रखा गया जिसके ऊपर और नीचे कारचोबी की मसनद लगी थी और उतार चढ़ाव के मोतियों की डेढ़ गज़ लंबी लड़ियाँ लटकती थीं जिनके नीचे शीशे की दो दो गोलियाँ थीं। लड़ियाँ लगभग तीस चालीस के थीं। छोटे अष्टकोणी गृह में जड़ाऊ छपरखट[1] रखा था। पानदान,[2] सुराही, गिलास, जड़ाऊ, सोने और चाँदी के बर्तन आलाओं पर रखे हुए थे। एक ओर पश्चिम में दीवानख़ान:, दूसरी ओर पूर्व में बाग़, तीसरी ओर दक्षिण में बड़ा अष्टकोणी गृह और चौथी ओर उत्तर में छोटा गृह था। इन तीनों गृहों के ऊपर एक एक और घर थे। इनमें एक को राज्यगृह कहते थे। इसमें नौ युद्धीय सामान थे—जैसे जड़ाऊ तलवार, कवच, खंजर, जमधर, धनुष और तूणीर—जो सब जड़ाऊ थे और उनके कारचोबी मिआन भी लटकते थे।

(१) गुलबदन बेगम ने कई हिंदी शब्दों का भी व्यवहार किया है।

(२) इससे जान पड़ता है कि मुग़लों में इस समय पान खाना जारी होगया था।

दूसरे घर[1] में जिसे पवित्रता का गृह कहते थे निमाज़ पढ़ने का स्थान, पुस्तकें, जड़ाऊ क़लमदान, सुंदर जिल्दें और अच्छी चित्र-पुस्तकें, जिनमें चित्र और लेख अच्छे थे, रखी हुई थीं।

तीसरे घर में जिसे सुखागार कहते थे, जड़ाऊ छपर-खट और चंदन के बर्तन थे, अच्छी तोशकें बिछी थीं जिनके पायताने अच्छी अच्छी निहालियाँ रखी थीं और उनके आगे दस्तरख़ान बिछे थे जो सब अच्छे ज़रबफ़्त के थे। बहुत प्रकार के मेवे और शर्बत आदि सभी सुख के सामान संचित थे।

जिस दिन तिलस्मी-घर में मजलिस थी (उस दिन) आज्ञा दी कि सब मिर्ज़ा, बेगम और अमीर भेंट लावें। आज्ञानुसार सब लाए। तब आज्ञा दी कि इस भेंट का तीन भाग करो। तीन थाली अशरफ़ी और छ थाली शाहरुख़ी हुई। एक थाली अशरफ़ी और दो थाली शाहरुख़ी हिंदू बेग को दी कि यह भाग राज्य का है इसे मिर्ज़ों, अमीरों, मंत्रियों और सैनिकों में बाँट दो। एक थाली अशरफ़ी और दो थाली शाहरुख़ी मौला मुहम्मद फ़रग़री को दी कि यह भाग पवित्रता का है इसको बड़ों, भद्रों, विद्वानों, महात्माओं, जोगियों, शेख़ों, साधुओं, संतों, मँगतों और दरिद्रों को दो। एक थाली अशरफ़ी और दो शाहरुख़ी को कहा कि

(१) इस प्रकार से तीन विभाग करने का कारण और उसका पूरा विवरण खाविंद अमीर ने अपने हुमायूँनामा में दिया है। इलियट डाउसन जिल्द ५ पृ० ११६।

यह भाग सुख का है इससे हमारा है, आगे लाओ। लाया गया तब कहा कि गिनने की क्या आवश्यकता है? पहले अपने हाथ से उसे छू दिया और कहा कि अब एक थाली अशरफ़ी और एक थाली शाहरुख़ी की बेगमों के आगे ले जाओ कि हर एक बेगम एक एक मुट्ठी ले लेवें। बची दो थाली शाहरुख़ी और सब अशरफ़ी जो दो सहस्र के लगभग थी और शाहरुख़ी जो दस सहस्र के लगभग रही उस सबको लुटा दिया और निछावर किया। पहले वलीनेअमतों के आगे और फिर दूसरों के आगे ले गए। मजलिस-वालों में से किसी ने भी सौ या डेढ़ सौ से कम नहीं पाया होगा। उन लोगों ने जो हौज़ में थे अधिक पाया।

बादशाह ने कहा कि आक: जानम यदि आज्ञा हो तो हौज़ में जल आवे। आक: जान ने कहा कि बहुत ठीक और स्वयं आकर ऊपर की सीढ़ी पर बैठ गईं। और लोग अन-जान थे कि एकाएक टोंटी खुलते ही जल आने लगा। युवा लोगों में अच्छी घबराहट पैदा होगई तब बादशाह ने कहा कि डर नहीं है हरएक एक एक लड्डू और एक एक कतरी माजून[1] की खावे और वहाँ से बाहर आवे। इसी बीच जिसने खा लिया झट बाहर आया। जल टहने तक पहुँच गया था। अंत में सब माजून खाकर बाहर आए। भोजन का सामान लाया गया और आदमियों

(१) भाँग का पुट देकर जो मिठाई बनती है उसे माजून कहते हैं।

को देने के लिए सरोपा रखे गए। माजून खानेवालों आदि को पुरस्कार और सरोपा[1] दिया गया।

तालाब के किनारे पर एक कमरा था जिसकी खिड़कियाँ अभ्रक की बनी हुई थीं। जवान लोग उसमें बैठे और बाज़ीगरों ने खेल दिखाए। ज़नानःबाज़ार भी लगा था और नावें भी सजी गई थीं। एक नाव के छ कोनों में मनुष्यों के छ चित्र बंधे हुए थे और छ कुँज बने थे, एक नाव में बालाखाना बना हुआ था और उसके नीचे बाग़ लगाया था जिसमें क़लग़ः, ताजख़रोस, नाफ़र्मान और लालः लगे हुए थे और एक में आठ नावें इस प्रकार लगाई गई थीं कि आठ टुकड़े हो जाती थीं। अर्थात् ईश्वर ने बादशाह के हृदय में इस प्रकार की नई वस्तुएं बनवाने की बुद्धि दी थी कि जो देखता था चकित होजाता था।

मिर्ज़ा हिंदाल की मजलिस[2] का दूसरा विवरण यह है।

सुलतानम बेगम[3] मेहदी ख़्वाजा की बहिन थी। पिता के बहनोई को जाफ़र ख़्वाजा के सिवाय दूसरा पुत्र नहीं था और न हुआ। आकःजानम ने सुलतानम को अपनी रक्षा में

---

(१) सिर से पाँव तक के सब कपड़ों को सरोपा कहते हैं। इसी समय १२००० सरोपा बाँटे गए थे।

(२) जौहर इसका सन् ६४४ हि०, १५३७ ई० में होना लिखता है।

(३) इसीके साथ हिंदाल का विवाह हुआ था।

पालन किया था और जब दो वर्ष की थी तब ख़ानज़ाद: बेगम ने उसे अपनी रक्षा में ले लिया था, बड़ा प्रेम रखती थी, भतीजी से बढ़कर जानती थी। उसने मजलिस की बड़ी तैयारी की थी।

ख़ेम:, मसनद, पाँच तोशक, पाँच तकिया, एक बड़ी तकिया, दो गोल तकिया, कौशक़: और परदा तथा तीन तोशक सहित बड़ा ख़ेमा जो सब कारचोबी का था। मिर्ज़ाओं के लिये सरोपा, कारचोबी की टोपी, कमरबंद, अँगौछा, कारचोबी का रूमाल और कवच का कारचोबी का ढाँकनेवाला।

सुलतान बेगम के लिए नौ नीमेआस्तीन थी जिनमें रत्नों की घुंडियाँ थीं। एक में लाल, एक में माणिक, एक में पन्ना, एक में फ़ीरोज़ा, एक में पुखराज और एक में लहसुनिया की थीं। मोती की नौ मालाएँ, एक पोशाक (तुर्की) और चार घुंडीदार कुरती, एक जोड़ चुन्नी की बाली और एक जोड़ मोती की, तीन पंखा, एक शाही छत्र, एक शाख, दो पुस्तकें, दूसरे सामान, वस्तु, कारखाने आदि जो ख़ानज़ाद: बेगम ने संचित किए थे सब दे दिए। ऐसी मजलिस की कि उसके समान मेरे पिता के और किसी संतान की नहीं हुई थी। सब संचित करके दिया—नौ तेज़ घोड़े जिनके ज़ीन और लगाम जड़ाऊ और कारचोबी के थे और सोने और चाँदी के बर्तन तथा तुर्की, चरकिस, रूसी और हबशी गुलाम हर एक नौ नौ थे।

बादशाह के बहनोई (महदी ख़्वाज:) ने मिर्ज़ा को जो भेंट दी थी वह यह थी—नौ तेज़ घोड़े जिनपर जड़ाऊ और कारचोबी

के ज़ीन और लगाम थीं और सोने तथा चाँदी के बरतन, अठारह मामूली घोड़े जिनकी ज़ीन और लगाम मख़मल, ज़रबफ़ और पुर्तगाली कपड़े की थी, तुर्की, हबशी और हिंदी गुलाम नौ नौ और तीन हाथी।

मजलिस के पूर्ण होने के अनंतर समाचार आया कि सुलतान बहादुर का वज़ीर ख़ुरासान ख़ाँ[1] बिआना तक आक्रमण करके आगया है। बादशाह ने मिर्ज़ा अस्करी को फ़ख्रे-अली बेग, मीर तार्दी बेग आदि कुछ अमीरों के साथ भेजा। इन लोगों ने बिआना जाकर युद्ध किया और ख़ुरासान ख़ाँ को परास्त किया। कुछ दिन के अनंतर बादशाह स्वयं गुजरात को सही सलामत चले। १५ रज्जब सन् ६४१ हि०[2] (२६ जनवरी १५३५ ई०) को गुजरात जाने की दृढ़ इच्छा की। ज़रअफ़शाँ बाग़ में पेशख़ाना तैयार किया जिसमें सेना एकत्र होने तक एक मास ठहरे।

दरबार के दिन जो अतवार और मंगल को था, वे नदी के उस पार जाते थे और जबतक बाग़ में रहते थे बहुधा आज़म,

---

(१) मिर्ज़ा मुक़ीम ख़ुरासान ख़ां। तबक़ाते-अकबरी में लिखा है कि गुजराती सेनापति तातार ख़ाँ लोदी बिआने पर भेजा गया था जिसे मिर्ज़ा हिंदाल ने परास्त किया था। इलिअट और डाउसन जिल्द ५ पृष्ठ १६० ।

(२) अबुलफ़ज़ल ने सेना एकत्र करने का समय जमादिउल्-अव्वल सन् ६४१ हि० (नवंबर १५३४ ई०) लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि बेगम ने रवानः होने की तारीख़ लिखी है।

बहिनें और बेगमें मिलने आती थीं। सबके ऊपर मासूमा सुलतान बेगम का ख़ेमा था जिसके अनंतर गुलरंग बेगम और आजम[1] का एक स्थान पर था। माता के ख़ेमे के अनंतर गुलबर्ग बेगम, बेगा बेगम[2] आदि के ख़ेमे थे।

कारख़ाने तैयार कराए। बाग़ में खेमः, मजलिसी और दरबारी ख़ेमे जब तैयार हुए, तब प्रथम बार उन्हें देखने को वे बाहर निकले। बेगमें और बहिनें भी आईं। मासूमा सुलतान बेगम के ख़ेमे के पास आगए थे इससे उनके ख़ेमे में गए। सब बेगमें और बहिनें बादशाह के साथ थीं क्योंकि जब किसी बेगम या बहिन के गृह पर जाते तब सब बेगमें और बहिनें भी साथ जाती थीं। दूसरे दिन मेरे ख़ेमे में आए और तीन पहर[3] रात्रि तक मजलिस रही। बहुधा सभी बेगमें, बहिनें, बेगः, आग़ः, आग़ाचः, गवैए और पढ़नेवाले थे। तीन पहर के अनंतर बादशाह ने आराम किया और बेगमों और बहिनों ने भी वहीं शयन किया।

बेगा बेगम ने जगाया कि निमाज़ का समय है। बादशाह

---

(१) दिलदार बेगम।

(२) हुमायूँ की स्त्री और अक़ीक़ः बेगम की माता थी। इस क्रम को लिखकर गुलबदन बेगम ने दिखलाया है कि बाबर की पुत्रियों और विधवाओं को हुमायूँ की बेगमों से अधिक प्रतिष्ठित स्थान मिलता था।

(३) गुलबदन बेगम ने पहर शब्द का व्यवहार किया है जिस पर बाबर ने आलोचना की है, क्योंकि यह समय का एक नए प्रकार का विभाग है। (आत्मचरित्र पृ० ३२१)

ने कहा कि वज़ू के लिये जल उसी ख़ेमे में तैयार हो। बेगम ने जानकर कि बादशाह जाग गए उलाहना दिया कि बाग़ में आए हुए कई दिन हुए पर आप एक दिन भी मेरे ख़ेमे में नहीं आए। मेरे ख़ेमे के रास्ते में काँटे नहीं बोए हुए हैं और आशा करती हूँ कि मेरे ख़ेमे में भी आकर मजलिस करेंगे। हम अनाथ पर कब तक ऐसी कृपा न रहेगी। हमें भी हृदय है। औरों के यहाँ तीन बार गए और दिन रात्रि वहाँ प्रसन्नता में व्यतीत किया। बादशाह ने कुछ नहीं कहा और निमाज़ को चले गए।

एक पहर दिन चढ़ गया था तब बहिनों, बेगमों, दिलदार बेगम, अफ़ग़ानी अग़ाचः, गुलनार अग़ाचः, मेवः जान, आग़ः जान और धायों को बुलवाया। जब कि हम सब गए और बादशाह कुछ नहीं बोले तब सबने जाना कि वे क्रोधित हैं। कुछ देर के अनंतर कहा कि बीबी, सबेरे तुमने हमसे किस दुःख पाने का उलाहना दिया था और वह स्थान उलाहना देने का नहीं था। तुम जानती हो कि मैं तुम्हीं लोगों के बड़ों के स्थान पर हूँ और उनके चित्त को प्रसन्न रखना मुझे आवश्यक है, तिसपर भी उनसे लज्जित हूँ कि देर में देखने जाता हूँ। मेरी यह सर्वदा इच्छा थी कि तुम लोगों से पत्र माँगू पर अच्छा हुआ कि तुमने आपही कह दिया। मैं अफ़ीमची हूँ, यदि आने जाने में देरी हो तो मुझसे दुखी न होवें और नहीं तो पत्र लिखकर देवें कि आपकी इच्छा आवें या न आवें हम सुखी हैं और धन्यवाद देती

हैं। गुलबर्ग बेगम ने उसी समय उस आशय का पत्र लिखकर दिया और (बादशाह ने) उनसे मिलने का समय ठीक कर दिया। बेगा बेगम ने कुछ तर्क किया कि दोष से मेरे उलाहने को अधिकतर बुरा मत समझिए। उलाहना देने से मेरी केवल यही इच्छा थी कि आप अपनी कृपा से मेरी प्रतिष्ठा बढ़ावेंगे पर आपने उस बात को यहाँ तक पहुँचा दिया। हम क्या कर सकती हैं? आप बादशाह हैं। फिर पत्र लिखकर दिया और बादशाह ने मिलने का समय नियत कर दिया।

१४ शाबान को वे ज़रअफ़शां बाग़ से कूच कर गुजरात को चले और सुलतान बहादुर के सिर पर पहुँच गए। मनहसूर[1] में सामना हुआ और युद्ध होने पर सुलतान बहादुर को परास्त किया जो भागकर चंपानेर[2] गया। अंत में बादशाह ने स्वयं पीछा किया तब वह चंपानेर छोड़कर अहमदाबाद की ओर गया।

बादशाह ने अहमदाबाद पर अधिकार कर लिया और कुल गुजरात को अपने आदमियों में बाँट दिया। मिर्ज़ा अस्करी को अहमदाबाद, क़ासिम हुसेन सुलतान[3] को भड़ोंच

(१) मनहसूर(मंदसूर) मालवा प्रांत के अंतर्गत है और यहीं के एक तलाब के तट पर युद्ध हुआ था। (इलिअट डाउसन जिल्द ५ पृ० १९१)

(२) सुलतान बहादुर मंदसूर से दुर्ग मांडू गया जिसे हुमायूँ के ले लेने पर वह चंपानेर गया। वहाँ से खंभात होता हुआ ड्यू गया था। (जौहर)।

(३) सुलतान हुसेन मिर्ज़ा बैक़रा की पुत्री आयशा सुलतान बेगम का पुत्र जो उज़बेग जाति का था।

और यादगार नासिर मिर्ज़ा[1] को पट्टन दिया। स्वयं कुछ मनुष्यों के साथ सैर के लिए वे चंपानेर से खंभात[2] गए। कुछ दिन के अनंतर एक स्त्री[3] ने समाचार दिया कि क्या बैठे हैं,[4] खंभाती इकट्ठे होकर आप पर आक्रमण करेंगे, आप सवार होइए। शाही अमीरों ने उस झुंड पर आक्रमण कर उन्हें परास्त किया और कुछ को मार डाला। इसके अनंतर वे बड़ौदा आए जहाँ से चंपानेर[5] गए।

---

(१) बाबर के सौतेले भाई नासिर का पुत्र था जो उसकी मृत्यु के अनंतर पैदा हुआ था। इसीसे इसका यादगार नासिर नाम रखा गया। वह हुमायूँ का चचेरा भाई था।

(२) जागीर बाँटने के पहलेही यह सैर हुई थी। बहादुर के पीछा करने का जो क्रम गुलबदन बेगम ने दिया है वह तबक़ाते-अकबरी आदि ग्रंथों से मिलता है। हुमायूँ ने यहीं प्रथम बार समुद्र देखा था और स्यात इसी कारण बेगम को भी यह वृत्तांत अधिक याद था।

(३) अबुलफ़ज़ल 'वृद्धा' स्त्री लिखता है। तबक़ाते-अकबरी में लिखा है कि उसका पुत्र हुमायूँ के यहां क़ैद था और उसीके छुटकारा पाने की आशा से उसने पता दिया था।

(४) अबुलफ़ज़ल लिखता है कि बहादुर के दो सर्दार मलिक अहमद और रुक्न दाऊद ने कोलीवाड़ा के पाँच छ सहस्र कोल और भीलों को बटोरकर आक्रमण किया था। इस आक्रमण से क्रोधित हो हुमायूँ ने शत्रु के नगर खंभात को लूटा था।

(५) चार महीने के घेरे के अनंतर रात्रि में दुर्ग के एक ओर जहाँ वह बहुत ऊँचा और सीधा था लोहे के बड़े बड़े अस्सी नब्बे काँटे गाड़े गए और इन्हीं के सहारे ३०० सैनिक दुर्ग में घुस गए। इनमें ४०वीं

बैठे हुए थे[1] कि गड़बड़ मचा और मिर्ज़ा अस्करी के मनुष्य जो अहमदाबाद में थे बादशाह के आगे आए। उन्होंने प्रार्थना की कि मिर्ज़ा अस्करी[2] और यादगार नासिर मिर्ज़ा एकमत होकर आगरे जाना चाहते हैं। जब बादशाह ने यह सुना तब आवश्यक समझ वे आगरे चले और गुजरात के कामों का कुछ विचार न कर कूच करते हुए आगरे आए। एक वर्ष तक[3] आगरे में रहे।

इसके अनंतर चुनार की ओर गए और उसे तथा बनारस को ले लिया[4]। शेरखां झारखंड[5] में था। उसने बादशाह की सेवा

मनुष्य बैराम खाँ और इकतालीसवें स्वयं हुमायूँ थे। इस प्रकार की वीरता का अफ़ीम ने नाश कर दिया। चंपानेर का अध्यक्ष इफ्तख़ार ख़ाँ था और यह दुर्ग सन् १५३६ ई० (९४३ हि०) में लिया गया था।

(१) हुमायूँ गुजरात में जागीर आदि बाँटकर मांडू लौट आया था और यहीं ठहरा था। यहाँ स्यात उसने बेगम आदि को भी बुलवा लिया था।

(२) इस समय तक अस्करी अहमदाबाद ही में था और एक सर्दार हिंदूबेग ने उसे अपने नाम ख़ुतबा पढ़वाने की सम्मति दी जिसे उसने नहीं माना। सुल्तान बहादुर के फिर आक्रमण करने पर ये सब बिना युद्ध किए ही आगरे लौट चले।

(३) इस एक वर्ष में शेरख़ाँ ने बहुत बल बढ़ा लिया था। गुलबदन बेगम का इस समय का ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन अधिक महत्त्व का नहीं है।

(४) शेर ख़ाँ का पुत्र कुतुबख़ाँ इस ओर का अध्यक्ष था।

(५) मूल में परकंदः लिखा है पर ठीक नाम झारखंड है जो छोटा नागपुर प्रांत में है।

में प्रार्थना कराई कि मैं आपका पुराना दास हूँ और यदि सीमाबद्ध स्थान मिले तो वहाँ बास करूं।

बादशाह इसी विचार में थे कि गौड़-बंगाल का बादशाह[1] घायल हो भागकर बादशाह के आगे आया। बादशाह उस विचार को त्यागकर कूच करते हुए गौड़-बंगाल की ओर चले। शेरख़ाँ भी यह जानकर कि बादशाह गौड़[2]-बंगाल गए स्वयं भी अकेले फुर्ती से चलकर गौड़ पहुँचा और अपने पुत्र से जा मिला। उसका पुत्र और सेवक ख़वास ख़ाँ गौड़ में थे। उसने ख़वास ख़ाँ और अपने पुत्र[3] को भेजा कि जाकर गढ़ी[4] को दृढ़ करो। ये आए और गढ़ी पर अधिकार कर लिया। बादशाह ने जहाँगीर बेग को पहलेही लिखा था कि एक मंज़िल आगे चलो। जब वह गढ़ी पर पहुँचा तब युद्ध हुआ जिसमें जहाँगीर बेग घायल हुआ और बहुत से मनुष्य मारे गए।

अंत में बादशाह खलगाँव में तीन चार दिन तक रहे और तब यह उचित जान पड़ा कि कूच करके आगे बढ़ें और गढ़ी के पास उतरें। तब कूच करके आगे बढ़ गढ़ी के पास जा

---

(१) गंगाजी और सोन नदी के संगम पर मनीआ में सय्यद महमूद शाह बंगालवाले ने आकर बादशाह से भेंट की थी।

(२) शेरख़ाँ गौड़ में ही था जिसे विजय कर वह शांति स्थापित करने में लगा हुआ था।

(३) शेरख़ाँ ने जलालख़ाँ नामक अपने पुत्र को गौड़ से भेजा था।

(४) बंगाल और बिहार के बीच में एक दर्रा है जिसके एक ओर गंगाजी और दूसरी ओर पहाड़ है। इसका नाम तेलिया गढ़ी भी है।

उतरे। रात्रि में शेरख़ाँ[1] और ख़वासख़ाँ भागे और दूसरे दिन बादशाह गढ़ी में गए। गढ़ी से आगे बढ़ गौड़-बंगाल गए और गौड़ लेलिया।

नौ मास तक वे गौड़ में रहे और उसका नाम जिन्नताबाद[2] रखा। अभी गौड़ में सुख से थे कि समाचार पहुँचा कि अमीर गण भागकर मिर्ज़ा हिंदाल[3] से मिल गए।

ख़ुसरू बेग,[4] ज़ाहिद बेग[5] और सय्यद अमीर[6] ने मिर्ज़ा

---

(१) शेरख़ाँ नहीं उसका पुत्र जलालख़ाँ भागा था।

(२) गौड़ की जल-वायु हुमायूं को इतनी अच्छी लगी कि उसने उस नगर का नाम जिन्नताबाद अर्थात् स्वर्ग का नगर रक्खा। यद्यपि साम्राज्य का चारों ओर नाश हो रहा था तिसपर भी हुमायूँ दूर देश में जाकर वहाँ महल में सुख करता रहा। तबक़ाते-अकबरी में लिखा है कि बादशाह वहाँ तीन मास रहे।

(३) इनकी अवस्था इस समय १९ वर्ष की थी और यह घटना सन् १५३८ ई० (९४५ हि०) में हुई। अवसर भी अच्छा था क्योंकि राजधानी और बादशाह के बीच में शेरख़ाँ डटा हुआ था।

(४) बाबर ने इसे सन् १५०७—८ ई० में हिरात से आया हुआ लिखा है। ख़ुसरू कोकल्ताश नाम के दो मनुष्य थे पर वे समसामयिक नहीं थे। सन् १५०२-३ ई० के लगभग एक की मृत्यु होजाने पर दूसरे का अभ्युदय हुआ।

(५) हुमायूँ की स्त्री बेगा बेगम की बहिन का पति था। बंगाल का सूबेदार नियुक्त होने पर जब उसने बादशाह की इस नियुक्ति की आज्ञा को नहीं माना तब उसे प्राणदंड की आज्ञा मिली जिसपर इन दो सर्दारों के साथ भागकर वह हिंदाल के पास चला आया। सन् १५४७ ई० में कामराँ ने इसे ग़ज़नी में मरवा डाला।

(६) बाबर की पुत्री गुलरंग बेगम का पति और सलीमा सुल-तान बेगम का पिता सय्यद नूरुद्दीन मिर्ज़ा यही था।

से आकर प्रार्थना की कि बादशाह दूर गए हैं और मुहम्मद सुलतान मिर्ज़ा और उसके पुत्र उलुग़ मिर्ज़ा और शाह मिर्ज़ा ने फिर सिर उठाया[1] है और सर्वदा एक स्थान पर रहते हैं। ऐसे समय में शेखों का रक्षक शेख़ बहलोल[2] अस्त्र शस्त्र और युद्धीय सामान तहख़ाने में छिपाकर और छकड़ों में लादकर शेरख़ाँ और मिर्ज़ाओं को भेजता है। मिर्ज़ा हिंदाल ने विश्वास नहीं किया और अंत में इसे निश्चय करने के लिए मिर्ज़ा नूरुद्दीन मुहम्मद को भेजा। अस्त्र शस्त्र पाए गए और शेख़ बहलोल मारा गया। जब यह समाचार बादशाह को मिला तब वे आगरे को चले। वे गंगाजी के उस किनारे से आते थे।

जब मुंगेर के बराबर पहुँचे तब अमीरों ने प्रार्थना की कि आप बड़े बादशाह हैं, जिस रास्ते आए हैं उसीसे चलिए जिससे शेरख़ाँ यह न कहे कि अपने आने का रास्ता रहते ही दूसरे रास्ते गए। फिर बादशाह मुंगेर को चले और अधिकतर

---

(१) हिंदाल ने इन्हें हाजहो में परास्त किया था। हिंदाल के विद्रोह के कारण आदि को पूरी तरह जानने के लिए असंकाइन का जौहर देखना चाहिए।

(२) शेख फूल भी नाम था। यह हुमायूँ का प्रियपात्र था। हुमायूँ ने उसे हिंदाल को विद्रोह से दूर रखने और समझाने के लिए भेजा था। षड्चक्रियों ने दोनों भाइयों में वैर बढ़ाने के लिए बात बनाकर उसे मार डाला था (अकबरनामा, जिल्द १ पृ० १८८)।

(३) मुवैयद बेग दुलदई बर्लास ने यह सम्मति दी थी। यद्यपि वह स्वयं क्रूर और अयोग्य था पर हुमायूँ का प्रियपात्र होने से उसकी यह बात मान ली गई, जो चौसा युद्ध में पराजय का एक कारण थी।

अपने आदमियों और परिवार को नाव पर साथ लिए हाजीपुर-पटना तक पहुँचे।

जाते समय क़ासिम सुलतान वहाँ रह गए थे। उसी समय समाचार पहुँचा कि शेरख़ाँ आ पहुँचा है। हर एक युद्ध में शाही सेना विजयी रहती थी। इसी समय जौनपुर से बाबा बेग, चुनार से मीरक बेग और अवध से मुग़ल बेग आकर तीनों अमीर साथ हुए जिससे अन्न महँगा होगया।

अंत में ईश्वर की इच्छाही ऐसी थी कि जब ये लोग निःशंक ठहरे हुए थे शेरख़ाँ ने पहुँचकर आक्रमण कर दिया। सेना परास्त हुई[1] और बहुत संबंधी और मनुष्य पकड़े गए। बादशाह के हाथ में भी घाव लगा। चुनार में तीन दिन ठहरकर वे आरेल आए। जब नदी के किनारे पहुँचे तब चकित हुए कि नाव बिना किस प्रकार पार उतरें। इसी समय राजा[2] ने पाँच छ सवारों के साथ आकर इनको एक उतार से पार किया। चार पाँच दिन से सैनिकगण बिना भोजन और मदिरा के थे। अंत में राजा ने बाज़ार लगवा दिया जिससे सेनावालों के

---

(१) गुलबदन बेगम ने यहाँ स्वभावतः बहुत ही संक्षेप में वृत्तांत दिया है। गंगाजी और सोन नदी के संगम के पास चौपट घाट पर २७ जून सन् १५३९ ई० (९ सफर सन् ९४६ हि०) को चौसा युद्ध हुआ था। हुमायूँ यहाँ से सीधा आगरे को गया था।

(२) राजा वीरभानु बघेला जिसने अपनी सेना के साथ हुमायूँ के पीछा करनेवाले मीर फ़रीद ग़ोर को भगा दिया था (जौहर)।

कुछ दिन आराम से बीत गए और घोड़े भी ताजे होगए । जो पैदल होगए थे उन्होंने नया घोड़ा खरीद लिया । अर्थात् राजा ने अच्छी और योग्य सेवा की और दूसरे दिन बादशाह ने उसे बिदा कर स्वयं जमुनाजी के किनारे आराम से दोपहर के निमाज़ के समय पहुँच गए । एक स्थान पर उतार पाकर सेना पार हुई और कुछ दिन पर कड़ा पहुँची । यहां से अन्न मिलने लगा क्योंकि अब शाही देश था । यहाँ सुस्ताने के उपरांत कालपी गए जहाँ से आगरे को चले । आगरे पहुँचने के पहले ही सुना कि शेरखां चौसा की ओर से आता है । आदमियों को बड़ी घबड़ाहट हुई ।

उस (चौसा के युद्ध के उपरांत) गड़बड़ में कितनों का कुछ भी पता नहीं लगा । उनमें सुलतान हुसेन मिर्ज़ा की पुत्री आयशा सुलतान बेगम, बचका[१] जो सम्राट पिता की खलीफ़ा थी, बेगा जान कोका, अक़ीक़: बेगम[२], चाँदबीबी जिसे सात महीने का गर्भ था और शादबीबी थीं, जिनमें ये तीन[३] शाही हरम की थीं ।

---

(१) बचका—बाबर के महल की खलीफ़ा अर्थात् मुख्य दासी थी । सन् १५०१ ई० में बाबर के साथ यह समरक़ंद से बचकर निकली थी । यह इस युद्ध में बेपता होगई ।

(२) अक़ीक़: बेगम—हुमायूँ और बेगा बेगम की दूसरी संतान थी । आगरे में सन् १५३१ ई० में जन्म हुआ था । सन् १५३४ ई० में माता के साथ ग्वालिअर गई और मजलिस में थी । आठ वर्ष की अवस्था में चौसा में खोगई । केवल गुलबदन बेगम ने इसके बारे में इतना लिखा है ।

(३) स्यात एक नाम छुट गया हो या दो के स्थान पर तीन लिख गया हो । अक़ीक़: बेगम भी हुमायूँ की पुत्री होने के कारण शाही हरम या महल में गिनी जा सकती है ।

इनमें से किसी का कुछ भी पता न लगा कि वे डूब गईं या क्या हुईं। बहुत खोज हुई पर कुछ भी पता नहीं चला।

ये (बादशाह) भी चालीस[1] दिन तक बीमार पड़े रहे जिसके अनंतर अच्छे हुए। इसी समय खुसरू बेग, दीवाना बेग, ज़ाहिद बेग और सैयद अमीर को जो बादशाह के पहले ही आए थे मिर्ज़ा मुहम्मद सुलतान और उसके पुत्रों की खबर मिली कि ये कन्नौज आए हैं।

शेख बहलोल के मारे जाने के अनंतर मिर्ज़ा हिंदाल दिल्ली गए। मीर फ़ुक़्अली और दूसरे भला चाहनेवालों को साथ लेकर मुहम्मद सुलतान मिर्ज़ा और उसके पुत्रों को दमन करने गए। मिर्ज़े उस ओर से भागकर कन्नौज को आए। मीर फ़ुक़्अली यादगार नासिर मिर्ज़ा को दिल्ली में ले गया परंतु मिर्ज़ा हिंदाल और मिर्ज़ा यादगार नासिर में मेल मिलाप नहीं था। मीर फ़ुक़्अली ने जब ऐसी कार्रवाई की तब मिर्ज़ा हिंदाल ने क्रोध में आकर दिल्ली को घेर लिया।

मिर्ज़ा कामराँ ने जब यह समाचार सुना तब इनको भी बादशाही की इच्छा पैदा हुई और वह बारह सहस्र सशस्त्र सवार साथ लेकर दिल्ली को चला। जब दिल्ली पहुँचा तब मीर फ़ुक़्अली और मिर्ज़ा यादगार नासिर ने दिल्ली का फाटक बंद कर दिया। दो तीन दिन के अनंतर मीर फ़ुक़्अली ने प्रतिज्ञा

---

(१) घाव और पराजय के शोक से कुछ दिन बीमार रहे। शोक का चालीस दिन लिख दिया है।

कराकर मिर्ज़ा कामराँ से भेंट की और प्रार्थना की कि बादशाह और शेरखाँ की ये दो बातें[१] सुनी गई हैं। मिर्ज़ा यादगार नासिर अपने स्वार्थ के कारण आपकी सेवा में नहीं आया। आपको यही चाहिए कि मिर्ज़ा हिंदाल को ऐसे समय पकड़कर आगरे जायँ और दिल्ली में बैठने का विचार न करें। मिर्ज़ा कामराँ ने मीर फ़ुक़अली की बात को पसंद करके उसे सरोपा देकर दिल्ली को बिदा किया और आप मिर्ज़ा हिंदाल को पकड़कर[२] आगरे आया और फ़िर्दौस-मकानी (के मक़बरे) का दर्शन कर[३] और माता बहिनों से भेंटकर गुलअफ़शाँ बाग़ में उतरा।

इसी समय नूरबेग आया और समाचार लाया कि बादशाह आते हैं[४]। शेख़ बहलोल को मारने के कारण मिर्ज़ा हिंदाल जो छिपा हुआ था स्वयं अलवर[५] चला गया।

कुछ दिन के उपरांत मिर्ज़ा कामराँ ने गुलअफ़शाँ बाग़ से आकर बादशाह की सेवा की। जिस दिन बादशाह आए उसी

(१) चौसा युद्ध के पराजय आदि की बातें।

(२) कामराँ के दिल्ली पहुँचने पर हिंदाल मिर्ज़ा आगरे गया पर जब मिर्ज़ा कामराँ वहाँ आया तब वह अपनी जागीर अलवर को चला गया (अकबरनामा)।

(३) अभी तक बाबर का शव काबुल नहीं गया था क्योंकि यह घटना सन् १५३९ ई० की है।

(४) चौसा युद्ध के अनंतर लौटकर।

(५) अपनी जागीर पर।

रात्रि को हमलोगों ने जाकर भेंट की। इस तुच्छ को देखकर उन्होंने कहा कि हमने तुमको पहले इस लिए नहीं पहिचाना कि जब मैं विजयी[1] सेना को गौड़-बंगाला ले गया था तब तुम टोपी पहिरती थीं और अब घूंघुट को देखकर नहीं पहिचाना[2]। गुलबदन! हम तुमको बहुत याद करते थे और कभी दुखित हो कहते थे कि अच्छा होता जो साथ लाते पर जब गड़बड़ हुआ तब धन्यवाद करते और कहते थे कि परमेश्वर धन्य है कि गुलबदन को साथ नहीं लाए। यद्यपि अक़ीक़ः छोटी थी तिसपर भी सहस्र दुःख और शोक होता है कि मैं क्यों उसे सेना के साथ लाया।

कई दिन पर बादशाह माता से मिलने आए उनके साथ क़ुरान था और उन्होंने आज्ञा दी कि एक साइत के लिए दासियाँ हट जायँ। वे हट गईं और एकांत हुआ। तब बादशाह ने आजम से, मुझसे, अफ़ग़ानी आग़ाचः, गुलनार आग़ाचः, नाज़गुल आग़ाचः और मेरी धाय से कहा कि हिंदाल मेरा बल और स्तंभ है यहाँतक कि मेरी आँखों का तेज, भुजा का बल, प्रेम

---

(१) चौसा युद्ध के बाद यह विशेषण अच्छा नहीं मालूम होता।

(२) इस अदल बदल से ज्ञात होता है कि गुलबदन बेगम का इसी बीच में विवाह हो गया था क्योंकि अब वह सत्रह अठारह वर्ष की हो गई थी। अविवाहित अवस्था में टोपी आदि पहिरने से पूरा मुख दिखलाता है पर विवाह होने पर लचक कसवा नामक किसी प्रकार का वस्त्र ओढ़ती थीं जिससे मुख कुछ छिप जाता था, नहीं तो हुमायूँ को पहिचानने में देर नहीं लगती।

और स्नेह का पात्र है। अच्छा हुआ। अपने शेख़ बहलोल को मारने के बारे में मैं मिर्ज़ा हिंदाल से क्या कहूँ। जो कर्म में लिखा था सो हुआ। अब मेरे हृदय में कुछ भी हिंदाल की ओर से धब्बा नहीं है और यदि सत्य न मानो[1]—। क़ुरान को उठाया ही था कि माता दिलदार बेगम और मैंने उसे उनके हाथ से लेलिया और सबने कहा कि ठीक है आप क्यों ऐसा कहते हैं? फिर कहा कि गुलबदन कैसा हो जो अपने भाई मुहम्मद हिंदाल मिर्ज़ा को तुम जाकर लिवा लाओ। मेरी माता ने कहा कि यह लड़की अल्पवयस्क है इसने कभी (अकेले) यात्रा नहीं की है, यदि आज्ञा हो तो मैं जाऊँ। बादशाह ने कहा कि हम आप को कैसे कष्ट दें और यह स्वयं प्रकट है कि संतानों को क्षमा करना माता पिता को योग्य है। यदि आप जावें तो हम सब पर कृपा होगी।

अंत में उन्होंने मिर्ज़ा हिंदाल को बुलवाने के लिए माता को अमीर अबुलबक़ा के साथ भेजा। मिर्ज़ा हिंदाल ने इस समाचार को सुनते ही स्वागत करके माता को प्रसन्न किया और साथ ही अलवर से आकर बादशाह की सेवा की। शेख़ बहलोल के बारे में कहा[2] कि शस्त्र और युद्धीय सामान शेरख़ाँ को भेजता था इससे जाँचकर मैंने शेख को मार डाला।

---

(१) इस कथन से मालूम होता है कि हुमायूँ का गुलबदन बेगम, हिंदाल और शेख़ पर कितना प्रेम था।

(२) दरबार में जहाँ सभी शाहजादे और सर्दार एकत्रत थे हुमायूँ

कुछ दिन के अनंतर समाचार आया कि शेरख़ां लखनऊ के पास पहुँच गया। उस समय बादशाह का गुलाम एक मशकची था। चौसा के पास जब बादशाह नदी में घोड़े से जुदा हुए तब इसने अपने को पास पहुँचाकर और सहायता करके उन्हें भँवर से बचा लिया था। अंत में बादशाह ने उस मशकची को तख़्त पर बैठाया और उसका ठीक नाम नहीं सुना गया, यद्यपि कुछलोग उसे निज़ाम और कुछ सुंबुल कहते हैं। निदान बादशाह ने उस दास को तख़्त पर बिठाया और आज्ञा दी कि सब अमीर उसे सलाम करें। दास ने हर एक को जो चाहा बाँटा और मंसब दिया। दो दिन तक उसे बादशाही दी। मिर्ज़ा हिंदाल उस दरबार में नहीं थे। वे लड़ाई का सामान इकट्ठा करने अलवर लौट गए थे। मिर्ज़ा कामराँ भी नहीं आए क्योंकि वे बीमार थे और उन्होंने कहला भेजा कि ग़ुलाम को और कुछ पुरस्कार देना चाहता था। क्या उसे तख़्त पर बैठाना चाहिए था? ऐसे समय जब कि शेरख़ाँ पास पहुँचा है यह क्या काम आप करते हैं?

उन्हीं दिनों मिर्ज़ा कामराँ का रोग ऐसा बढ़ गया और वे ऐसे निर्बल और दुबले होगए थे कि उनका मुँह नहीं पहिचान

ने कामराँ से पूछा कि हिंदाल ने क्यों विद्रोह किया? कामराँ ने वही प्रश्न हिंदाल से किया जिसने बड़ी लज्जा के साथ अपनी छोटी अवस्था, कुमित्रों की राय आदि कारण बतला क्षमा मांगी (जौहर)।

पड़ता था और जीवन की आशा नहीं रह गई थी। ईश्वर की कृपा से कुछ अच्छे हुए। मिर्ज़ा को संशय हो गया कि बादशाह की सम्मति से किसी माता[1] ने उन्हें विष दे दिया है। बादशाह ने भी इस बात को सुना। एक बार वे मिर्ज़ा कामराँ को देखने आए और शपथ खाकर उन्होंने कहा कि कभी यह मेरे विचार में नहीं आया और न किसीसे ऐसा कहा है। शपथ पर भी मिर्ज़ा कामराँ का हृदय शुद्ध नहीं हुआ और रोग दिन पर दिन बिगड़ता गया यहाँ तक कि वे बोल नहीं सकते थे।

जब समाचार मिला कि शेरख़ाँ लखनऊ से आगे बढ़ा है तब बादशाह कूँच कर क़न्नौज को चले और आगरे में मिर्ज़ा कामराँ[2] को अपने स्थान पर छोड़ गए। कुछ दिन पर मिर्ज़ा कामराँ ने यह सुनकर कि बादशाह पुल बाँध गंगाजी पार होगए आगरे से कूच कर दिया।

वे लाहौर की ओर ठहरे हुए थे कि मिर्ज़ा कामराँ ने बादशाही फ़र्मान भेजा कि तुम को[3] आज्ञा है कि मेरे साथ लाहौर जाओ। मिर्ज़ा कामराँ ने[4] बादशाह से मेरे लिए कहा होगा कि मेरा रोग बहुत बड़ा है और मैं निर्बल, निस्सहाय और सहा-

(१) बाबर की बिधवा स्त्रियों में से किसी एक ने।

(२) हुमायूँ कामराँ पर आगरा आदि की रक्षा का भार छोड़ गया था पर उसने कपट किया।

(३) गुलबदन बेगम को।

(४) जब दोनों भाई आगरे ही में थे।

नुभूति के योग्य हूँ। यदि गुलबदन बेगम को आज्ञा हो कि मेरे साथ लाहौर जायँ तो बड़ी कृपा और दया होगी। बादशाह ने उनके सामने कहा होगा कि जावें। जब बादशाह लखनऊ को दो तीन मंज़िल बढ़े तब मिर्ज़ा ने शाही फ़र्मान[1] दिखाया और कहा कि तुम मेरे साथ चलो। मेरी माता ने उसी समय[2] कहा होगा कि इसने हम लोगों से कभी अलग यात्रा नहीं की है। उन्होंने कहा कि यदि अकेले यात्रा नहीं की है तो आप भी साथ चलिए। उन्होंने पाँच सौ सैनिक, बड़े ख्वाजे और अपने दोनों अनगों और कोकों को भेजा कि यदि साथ न चलें तो एक मंज़िल स्वयं आवें। अंत में उस मंज़िल पर पहुँचने पर शपथ खाकर कहा कि मैं तुमको नहीं छोड़ूँगा।

अंत में बहुत रोने पीटने पर भी मैं माताओं, अपनी माता, बहिनों, पिता के मनुष्यों और भाइयों से बलात् अलग की गई जिनके साथ छोटी अवस्था से बड़ी हुई थी। इस प्रकार की बादशाही आज्ञा देखकर मैं चुप होरही और बादशाह को प्रार्थनापत्र लिखा कि मैं बादशाह से ऐसी आशा नहीं रखती थी कि इस तुच्छ जीव को अपनी सेवा से

(१) पूर्वोक्त फ़र्मान।

(२) फ़र्मान देखने के अनंतर की यह बातचीत दिलदार बेगम और कामराँ के बीच हुई थी जिसने आगरे से कूच करने के पहले यह बातचीत उठाई होगी। हुमायूँ ने प्रसन्नता से यह आज्ञा नहीं दी थी और इस बहाने का वह ऐसा कोरा उत्तर न देता।

दूर करके मिर्ज़ा कामराँ को दे देंगे। इसके उत्तर में बादशाह ने सलामनामः भेजा जिसका आशय था कि मैं नहीं चाहता था[1] कि तुमको अलग करूँ पर जब मिर्ज़ा ने बहुत हठ और विनय किया तब आवश्यक हुआ कि तुम्हें मिर्ज़ा को सौंपूँ क्योंकि अभी हम भी भारी काम[2] में लगे हुए हैं। ईश्वरेच्छा से जब यह काम निपटेगा तब पहले तुम्हें बुलवाऊँगा।

जब मिर्ज़ा लाहौर चले तब अमीरों और व्यापारियों आदि में से बहुतों ने अपने स्त्री और बालबच्चों को मिर्ज़ा कामराँ के साथ लाहौर भेज दिया।

लाहौर पहुँचने पर समाचार आया कि गंगाजी के तट पर युद्ध हुआ और शाही सेना परास्त हुई[3]। इतना ही अच्छा

(१) गुलबदन बेगम का पति ख़िज्र ख़्वाजा ख़ाँ कामराँ के दामाद आक़ सुलतान (ईसनदौलात्) का भाई था। गुलबदन के स्नेह के साथ उसके पति की सेना की भी उसे आवश्यकता थी।

(२) शेरख़ाँ की शत्रुता जिसका अंत कन्नौज युद्ध में होगया। इस प्रकार गुलबदन बेगम की कष्टमय यात्रा से रक्षा होगई।

(३) १७ मई सन् १५४० ई० को युद्ध हुआ। मिर्ज़ा हैदर ने अपने तारीख़ेरशीदी में इस युद्ध का अच्छा वर्णन दिया है। दाहिना भाग मिर्ज़ा हिंदाल के अधीन था जिसने शेरख़ाँ के पुत्र जलाल ख़ाँ को परास्त कर दिया। बाईं ओर मिर्ज़ा अस्करी को ख़वास ख़ाँ ने पराजित किया और मध्य में स्वयं हुमायूँ के भी हार जाने पर इन्हें भी उनके साथ भागना पड़ा।

हुआ कि बादशाह अपने भाइओं और आपस वालों के साथ उस घटना[1] से बचकर निकल गए।

दूसरे संबंधीगण जो आगरे में थे अलवर होते हुए लाहौर चले[2]। उस समय बादशाह ने मिर्ज़ा हिंदाल से कहा कि प्रथम घटना[3] में अक़ोक़: बीबी खो गई थीं जिससे बहुत दुखित हुआ था कि अपने सामने क्यों नहीं उसे मार डाला। अब भी स्त्रियों का ऐसे समय साथही रक्षा के स्थान पर पहुँचाना कठिन है। अंत में मिर्ज़ा हिंदाल ने प्रार्थना की कि माता और बहिनों को मारना कैसा पाप है सो आप पर प्रकट है पर जब तक प्राण है तबतक उनकी सेवा में परिश्रम करता हूँ और आशा करता हूँ कि ईश्वर की कृपा से माता और बहिन के पद में इस अपने तुच्छ प्राण को निछावर करूँगा।

अंत में बादशाह मिर्ज़ा अस्करी, यादगार नासिर मिर्ज़ा और अमीरगण जो युद्धस्थल से बच गए थे उनके साथ फ़तहपुर गए[4]।

(१) चौसा युद्ध के समान इस युद्ध में भी हुमायूँ डूब चुके थे। वहाँ शमसुद्दीन मुहम्मद ग़ज़नवी ने बचाया था जिसकी स्त्री जीजी अनग: अकबर की धाय थी।

(२) मिर्ज़ा हिंदाल की रक्षा में।

(३) चौसा युद्ध।

(४) इनमें हैदर मिर्ज़ा भी था जिसने लिखा है कि भागनेवाले बड़े उत्साहहीन थे और उनके हृदय टूट गए थे। बाबर के विजयस्थल फ़तहपुर ने इस दुःख को कुछ बढ़ाया ही होगा। बाबर के बनवाए हुए बाग़ में ही ये ठहरे थे।

मिर्ज़ा हिंदाल अपनी माता दिलदार बेगम, बहिन गुल-चेहर: बेगम, अफ़ग़ानी आग़ाच:, गुलनार आग़ाच:, नाज़गुल आग़ाच: और अमीरों के स्त्री बालबच्चों को आगे करके ले चले कि गँवारों ने इन पर आक्रमण किया। इनके कुछ घुड़सवार सैनिकों ने आक्रमण कर उन्हें परास्त किया और एक तीर इनके अच्छे घोड़े को लगा। बहुत मार काट हुई और गँवारों के क़ैद से निर्बलों को बचाकर अपनी माता और बहिन को तीस अमीरों और मनुष्यों के साथ आगे (लाहौर के) भेजकर वे अलवर आ पहुँचे।

कपड़े और तंबू आदि कुछ सामान जो आवश्यक थे साथ लेकर लाहौर चले। मिर्ज़ाओं और अमीरों को भी जो चाहता था साथ लेकर वे थोड़े दिनों में लाहौर पहुँचे।

बादशाह ख़्वाज: ग़ाज़ी[1] के बाग़ में उतरे जो बीबी हाज-ताज[2] के पास है। प्रतिदिन शेरख़ाँ का समाचार मिलता रहा।

(१) अबुलफ़ज़ल लिखता है कि हिंदाल ख़्वाजा ग़ाज़ी के बाग़ में और हुमायूँ ख़्वाजा दोस्त मुंशी के बाग़ में उतरे थे।

(२) मुहम्मद के दामाद अली के भाई आक़िल की पुत्रियाँ—बीबी हाज, बीबी ताज, बीबी हूर, बीबी नूर, बीबी गौहर और बीबी शाबाज़, इमाम हुसेन के कर्बला में मारे जाने पर वहाँ से भारत भाग आईं और लाहौर के पास ठहरीं। उन्होंने नगर के कुछ लोगों को मुसलमान बनाया जिससे वहाँ के हिंदू अध्यक्ष ने क्रोधित होकर अपने पुत्र को उन्हें निकालने भेजा पर वह भी वहीं रह गया। तब अधिक क्रोधित होकर कुछ सैनिक साथ ले अध्यक्ष स्वयं उनपर गया पर उन स्त्रियों के प्रार्थना करने से पृथ्वी फट गई और वे उसी में समा गईं (ख़ज़ीनतुलआसफ़िया जिल्द २, पृ० ४०७)।

तीन महीने तक ये लाहौर में थे और प्रतिदिन पता लगता था कि शेरखाँ दो कोस तीन कोस आया यहाँ तक कि वह सरहिंद पहुँच गया।

बादशाह ने मुज़फ़्फ़र बेग तुर्कमान नामक अमीर को क़ाज़ी अब्दुल्ला के साथ शेरखाँ के पास (यह कहलाने) भेजा कि क्या यह न्याय है। कुल देश हिंदुस्थान को तुम्हारे लिए छोड़ दिया है, एक लाहौर बचा है। हमारे और तुम्हारे मध्य में सीमा सरहिंद रहे। उस अन्यायी और ईश्वर से न डरनेवाले ने नहीं मानकर कहा कि काबुल तुम्हें छोड़ दिया है तुम्हें वहाँ जाना चाहिए।

मुज़फ़्फ़र बेग उसी समय चल दिया और एक मनुष्य भेजकर कहलाया कि कूच करना चाहिए। समाचार पहुँचते ही बादशाह चले। वह दिन मानों प्रलय का था कि सजे हुए स्थानों और सब सामानों को वैसेही छोड़ दिया पर सिक्का जो साथ था उसे जितना ले जा सके ले लिया। ईश्वर को धन्यवाद है कि लाहौर की नदी (रावी) का उतार मिल गया जिससे सब मनुष्य पार उतर गए और कुछ दिन तट पर ठहरे थे जब कि शेरखाँ का दूत आया। सबेरे भेंट करना निश्चित किया तब मिर्ज़ा कामराँ ने प्रार्थना की कि कल मजलिस होगी और शेरखाँ का एलची आवेगा। यदि आपके ग़लीचे के कोने पर बैठूँ[1]

(१) कामराँ दूत को यह दिखलाना चाहता था कि वह हिंदाल आदि के समान न होकर हुमायूँ की बराबरी का दावा रखता है। कामराँ

तब मेरे और भाइयों के मध्य की विभिन्नता मेरी प्रतिष्ठा का कारण होगी।

हमीदा बानू बेगम[1] कहती हैं कि इस रुबाई को बादशाह ने

के अधीनस्थ पंजाब में उस समय हुमायूँ था इससे वह उसके बराबर बैठने का विचार कर रहा था। कामराँ के कपट और धोखे का बहुत कुछ वृत्तांत इसी पुस्तक में आया है। इसी समय कामराँ को मारडालने की लोगों ने सम्मति दी थी पर हुमायूँ ने नहीं माना। बहुत कष्ट झेलने पर अंत में बादशाह को उसे अंधा करने की आज्ञा देनी पड़ी।

(१) हमीदा बानू बेगम—यह हुमायूँ की स्त्री और अकबर की माता थीं। इनके वंश का पूरा और ठीक वृत्तांत लिखने में कुछ कठिनाई है परंतु यह अहमद जामी ज़िंदःफ़ील के वंश की थीं। इनके पिता का नाम शेख़ अली अकबर उपनाम मीर बाबा दोस्त था जो हिंदाल का शिक्षक था। इसके भाई का नाम ख़्वाजा मुअ्ज़्ज़म था। ये दोनों भी हुमायूँ के साथ फ़ारस गए थे। माहम बेगम भी अहमद जामी के ही वंश की थीं। शहाबुद्दीन अहमद नैशापुरी की स्त्री बानू बेगम से माहम अनगा से कुछ संबंध था और हमीदा बेगम से भी कुछ नातेदारी थी। बेगा (हाजी) बेगम भी अहमद जामी ज़िंदःफ़ील के ही वंश में थीं।

सन् १५४१ ई० के आरंभ में चौदहवें वर्ष की अवस्था में हमीदा बेगम का विवाह हुमायूँ के साथ पाटन में हुआ। सिंध में यह साथ रहीं जहाँ से अमरकोट तक रेगिस्तान की कड़ी यात्रा की। यहाँ १५ अक्टूबर सन् १५४२ ई० को अकबर का जन्म हुआ। दिसंबर में जूनगाँव गईं जहाँ से सन् १५४३ई०में कंधार को चलीं, पर शाल मस्तान में पुत्र को छोड़ हुमायूँ के साथ फ़ारस का रास्ता लिया। रास्ते में फ़ारस के सूबेदारों ने बड़ा स्वागत किया। शाह तहमास्प और उसकी बहिन ने हमीदा बेगम के साथ अच्छा व्यवहार किया। सन् १५४४ई० में सब्ज़बार कैंप में एक

लिखकर मिर्ज़ा को भेजा था और मैंने सुना था कि शेरखाँ को उत्तर में लिखकर दूत के हाथ भेजाथा[१]। रुबाई (का अर्थ) यह है कि—

पुत्री उत्पन्न हुई। फ़ारस की यात्रा का वृत्तांत गुलबदन बेगम ने इन्हीं से मालूम किया होगा। फ़ारस से लौटने पर १५ नवंबर सन् १५४५ ई० को अपने पुत्र को देखा। इसी के बाद हुमायूँ ने माहचूचक बेगम से विवाह किया था। सन् १५४८ ई० में जब हुमायूँ तालिक़ान जा रहा था तब यह अकबर सहित गुलबिहार तक साथ गईं और वहां से काबुल लौट आईं। गुलबदन बेगम की वर्णित रिवाज की सैर यही मालूम होती है। नवंबर १५५४ ई० में जब हुमायूँ ने भारत पर आक्रमण किया तब यह काबुल में रहीं।

बायजीद बिश्रात लिखता है कि एक मकान उनके नौकर के लिए ख़ाली नहीं करने के कारण वह खफ़गी में पड़ गया था, पर मुनइमख़ाँ आने की आज्ञा का हाल कहकर उसने क्षमा माँग ली। निज़ामुद्दीन के दादा ख़्वाजा मीरक को जो हमीदा बेगम का दीवान था अकबर के राजत्व के आरंभ में मिर्ज़ा सुलेमान का पक्ष लेने के कारण मुनइमख़ां ने फांसी दिलवा दी।

पति के मृत्यु के अनंतर सन् १५५७ई० में गुलबदन बेगम आदि के साथ यह भारत आईं। पाँचवे वर्ष ये दिल्ली में थीं और बैराम ख़ाँ के विरुद्ध इन्होंने भी सम्मति दी थी। यह गुलबदन बेगम के साथही उसके अंत तक रहीं। अबुलफ़ज़ल लिखता है कि रोज़ा के पूरे होने पर अकबर के पास पहले पहल मां के ही भेजी मांसादि की थालियां लाई जाती थीं।

सन् १६०४ ई० में लगभग सतहत्तर वर्ष की अवस्था में इनकी मृत्यु हुई।

(१) इस समय तक हमीदा बेगम का विवाह नहीं हुआ था पर

दर्पण में यद्यपि अपना स्वरूप दिखलाई पड़ता है, तिसपर भी वह अपने से भिन्न रहता है। अपने को दूसरे के समान देखना आश्चर्यजनक है, पर यह विचित्रता भी ईश्वरीय कार्य्य है।

शेरखाँ के दूत ने आकर कोर्निश की।

बादशाह का हृदय सुस्त होगया जिससे निद्रा सी आ गई। उन्होंने स्वप्न में देखा कि सिर से पाँव तक हरा वस्त्र पहिरे हुए और हाथ में छड़ी लिए हुए एक पुरुष आए हैं जो कहते हैं कि धैर्य्य रखो शोक मत करो। अपनी छड़ी बादशाह के हाथ में देकर उन्होंने कहा कि ईश्वर तुम्हें पुत्र देगा जिसका नाम जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर होगा। बादशाह ने पूछा कि आपका क्या नाम है? उत्तर दिया कि ज़िंद:फ़ील[1] अहमद जाम। और भी कहा कि वह पुत्र मेरे वंश[2] से होगा।

उस समय बीबी गौनूर गर्भवती थीं और सबने कहा कि

उन्होंने अपने पति से यह सुना होगा। गुलबदन बेगम उस समय लाहौर में ही थीं। और इन दोनो बातों में कौन ठीक है सो नहीं कहा जा सकता। गुलबदन बेगम ने दोनों सम्मतियाँ देकर उसका विचार पाठकों पर ही छोड़ दिया है और उनका इतना लिखना उनके उच्च विचार का नमूना है।

(१) भयानक हाथी।

(२) हुमायूँ की माता माहम बेगम उसी वंश की थीं जिससे हुमायूँ भी उसी वंश का हुआ पर इस भविष्यवाणी के अनुसार अकबर की माता को भी उसी वंश का होना चाहिए जो हमीदाबानू बेगम के साथ विवाह होने से पूर्ण हो गई।

पुत्र होगा। दोस्त मुंशी के उसी बाग़ में जमादीउलूअव्वल के महीने में पुत्री हुई जिसका नाम बख़्शीबानू बेगम[1] रखा गया।

इन्हीं दिनों बादशाह ने मिर्ज़ा हैदर को काश्मीर पर अधिकार करने के लिए नियुक्त किया था। उसी समय समाचार आया कि शेरख़ाँ आ पहुँचा जिससे बड़ी घबड़ाहट मची और सबेरे कूच करना ठीक हुआ।

जिस समय सब भाई लाहौर में थे उस समय प्रति दिन राय होती थी पर कुछ ठीक नहीं हुआ और अंत में शेरख़ाँ के आने का समाचार भी आ गया। दूसरा उपाय न रहने से जब कि एक पहर दिन चढ़ा था तभी कूच कर दिया और बादशाह की इच्छा काश्मीर जाने की थी इसीसे मिर्ज़ा हैदर काशग़री को (उस ओर) भेजा था। परंतु अभी काश्मीर-विजय का समाचार नहीं आया था और लोगों ने सम्मति दी कि यदि बादशाह काश्मीर गए और वह नहीं मिला और शेरख़ाँ लाहौर में आ पहुँचा तब बड़ी कठिनाई होगी।

(१) बख़्शीबानू बेगम—इसकी माता गौनूर भी भविष्यवाणी के अनुसार अहमद जामी के ही वंश की रही होगी। इसका जन्म सितंबर सन् १५४० ई० में हुआ था। सन १५४३ ई० में अकबर के साथ यह भी मिर्ज़ा अस्करी के द्वारा पकड़ी गई और सन १५४५ ई० के जाड़े में साथ ही कंधार से काबुल भेजी गई। सन १५५० ई० में इसका विवाह सुलेमान मिर्ज़ा और हरम बेगम के पुत्र इब्राहीम के साथ हुआ जो छ वर्ष बड़ा था। सन १५६० ई० में उसके मारे जाने पर यह विधवा हुई। तब उसी वर्ष अकबर ने मिर्ज़ा शरफ़द्दीन हुसेन अहरारी से विवाह कर दिया।

ख़्वाजा कलां बेग[1] स्यालकोट में था जो बादशाह की सेवा करने चला। उसके साथ मुवैयद बेग था जिसने प्रार्थना-पत्र भेजा कि ख्वाज: सेवा करने में आगा पीछा कर रहा है और मिर्ज़ा कामराँ का स्यात् विचार रखता है। यदि बादशाह जल्दी से आवें तो ख्वाजा की सेवा अच्छी प्रकार मिल जाय[2]। बादशाह इस समाचार को सुनकर उसी समय शस्त्र आदि धारण करके चले और ख़्वाजा को साथ ले लिया।

बादशाह ने कहा कि भाइयों की सम्मति से हम बदख़्शाँ जावेंगे और काबुल मिर्ज़ा कामराँ के अधीन रहेगा। परंतु मिर्ज़ा कामराँ (बादशाह) के काबुल जाने के बारे में सम्मत नहीं हुए[3] और कहा कि बाबर बादशाह ने अपने जीवन में मेरी माता (गुलरुख़ बेगम) को काबुल दिया था वहाँ जाना योग्य नहीं।

बादशाह ने कहा कि काबुल के बारे में बादशाह फ़िर्दौस-मकानी बहुधा कहा करते थे कि हम काबुल किसीको नहीं देंगे यहाँ तक कि लड़के उसका लोभ भी नहीं करें क्योंकि ईश्वर ने कुल संतान हमें वहीं दी हैं और उसके अधिकार के अनंतर बहुधा विजय ही प्राप्त हुई है। तिसपर उनके आत्मचरित्र में यह बात कई बार लिखी है। मिर्ज़ा के साथ इतनी कृपा और भ्रातरोचित व्यवहार से क्या हुआ जब वे ऐसा कहते हैं।

---

(१) बाबर का पुराना सर्दार जो उस समय कामरां के अधीन था।

(२) मुवैयद बेग जो बराबर कुसम्मति देता था उसने इस समय बड़ी भलमनसाहत दिखलाई।

(३) इस डर से कि वहाँ पहुँचकर हुमायूँ आगे नहीं बढ़ें।

बादशाह जितनाही समझाते थे मिर्ज़ा उतनीही अधिकतर असम्मति प्रकट करते थे। जब बादशाह ने देखा कि मिर्ज़ा के पास सेना भी अधिक है और काबुल जाने में वह किसी प्रकार सम्मत नहीं है तब निरुपाय होने पर आवश्यक हुआ कि बक्खर और मुलतान जायँ। जब मुलतान पहुँचे तब एक दिन वहाँ ठहरे। अन्न बहुत कम हुआ था और जो कुछ दुर्ग में उत्पन्न हुआ था उसे मनुष्यों में बाँटकर बादशाह ने कूँच किया और नदी के तट पर पहुँचे जहाँ सात नदियाँ[1] मिलकर आई थीं। वे चकित रह गए कि नाव एक भी नहीं और साथ में कंप बहुत बड़ा है। इसी समय समाचार मिला कि ख़वास ख़ाँ कुछ सर्दारों के साथ पीछे आ रहा है।

बख़्शू नामक बिलूची के पास जिसके पास दुर्ग और बहुत मनुष्य थे एक मनुष्य को झंडा, नगाड़ा, घोड़ा और सरोपा के साथ बादशाह ने भेजा कि नावें और अन्न लावे। अंत में बख़्शू ने एक सौ के आसपास नावें अन्न से भरी हुई बादशाह की सेवा में भेजीं। इस कार्य्य से बादशाह बड़े प्रसन्न हुए और अन्न को सैनिकों में बाँट कर नदी[2] के पार कुशलता से उतर गए। पूर्वोक्त बख़्शू पर ईश्वर कृपा रखे कि उसने समयानुकूल कार्य्य किया।

---

(१) सतलज, व्यास, रावी, चिनाब, झेलम, सरस्वती (अब अदृश्य) और सिंध नामक सात नदियों का जल यहाँ मिलकर बहता था। प्रथम पाँच नदियों के बहने से यह प्रांत पंजाब कहलाया।

(२) गारा नदी जो अच्छ के पास है।

अंत में चलते चलते बक्खर पहुँचे। दुर्ग बक्खर नदी के बीच में बना है और बड़ा दृढ़ है। उसका अध्यक्ष सुलतान महमूद[1] दुर्ग बनवाकर बैठा था। बादशाह कुशलपूर्वक दुर्ग के बगल में उतरे। दुर्ग के पासही मिर्ज़ा शाह हुसेन समंदर का बनवाया हुआ एक बाग़[2] था।

अंत में बादशाह ने मीर समंदर[3] को शाह हुसेन मिर्ज़ा के यहाँ भेजा कि आवश्यकता पड़ने से तुम्हारे देश में आए हैं तुम्हारा देश तुम्हीं को बना रहे हम अधिकार करना नहीं चाहते। अच्छा होता कि तुम स्वयं आकर भेंट करो और जैसा चाहिए वैसी सेवा करो क्योंकि हम गुजरात जाना चाहते हैं और तुम्हारा देश तुम्हें छोड़ते हैं। शाह हुसेन मिर्ज़ा ने बहाने बहाने में पाँच महीने तक बादशाह को समंदर में रखा और उसके अनंतर बादशाह की सेवा में कहला भेजा कि अपनी पुत्री के विवाहोत्सव का सामान करके आपकी सेवा में भेजता हूँ और स्वयं भी आऊँगा।

---

(१) शाह हुसेन अर्गून का धाय-भाई था जिसके लिए सन् १५५४ ई० में सीदीअली रईस ने हुमायूँ से संधि की बातें तै की थीं।

(२) सिंध नदी के बाएँ तट पर रुहरी में यह चारबाग़ बहुत अच्छा बना हुआ है। सामने दूसरे तट पर बक्खर बसा है। हुमायूँ के पड़ाव डालने पर भी शाह हुसेन ने युद्ध की कोई तैयारी नहीं की।

(३) समंदर का अर्थ नदी और एक जानवर है जो मूसे के आकार का पर उससे कुछ बड़ा होता है और आग में से निकलने पर मर जाता है। मीर समंदर का अर्थ नदियों का अध्यक्ष है।

बादशाह ने उसकी बात को सत्य माना। तीन मास और भी व्यतीत होगया। अन्न कभी होता कभी नहीं होता था यहाँ तक कि सैनिकों ने घोड़ों और ऊँटों को मारकर खा डाला। तब बादशाह ने शेख़ अब्दुल ग़फ़ूर[1] को भेजा कि पूछें कि किस लिए देरी हो रही है और आने में क्या रुकावट है? इस बार काम बिगड़ गया है और बहुत आदमी भाग रहे हैं। उसने उत्तर भेजा कि मेरी पुत्री[2] मिर्ज़ा कामराँ से ब्याही है इसलिये मुझसे मिलना कठिन है। हम तुम्हारी सेवा नहीं कर सकते।

इसी बीच मुहम्मद हिंदाल मिर्ज़ा नदी पार हुए[3] तब कुछ मनुष्य कहने लगे कि वे कंधार जाते हैं। जब बादशाह ने सुना तब कुछ मनुष्यों को मिर्ज़ा के पीछे भेजा कि जाकर पूछें कि सुना है कि इच्छा कंधार की रखते हो। जब मिर्ज़ा से यह पूछा गया

---

(१) हुमायूँ का कोषाध्यक्ष जिसका कार्यभार इस समय बड़ा हलका रहा होगा।

(२) माह चूचक बेगम–शाहहुसेन अर्गून और माह चूचक अर्गून की पुत्री थी और अपने पिता की केवल यही एक संतान थी। सन् १५४६ ई० में कामराँ से विवाह हुआ। इसकी पतिभक्ति की सभी इतिहासों ने प्रशंसा की है। कामराँ के अंधे किए जाने पर यह साथ मक्का गई। ५ अक्तूबर सन् १५५७ ई० को उसकी मृत्यु तक उसकी सेवा करती रही। उसने केवल सात महीने तक वैधव्य भोग किया।

(३) मिर्ज़ा हिंदाल सिंध नदी से दस कोस और सेहवन से बीस कोस पर पातर में ठहरे थे जो सर्कार सिविस्तान में हैदराबाद जानेवाली सड़क के कुछ पूर्व और सन् १८४३ ई० के नेपियर के विजयस्थल मिआनी के उत्तर में है। यह अब खंडहर हो गया है।

तब कहा कि झूठ है। बादशाह यह समाचार सुनतेही माता को देखने आए[1]।

मिर्ज़ा के हरमों और मनुष्यों ने बादशाह की उसी मजलिस में सेवा की। हमीदा बानू बेगम को पूछा कि यह कौन है? कहा कि मीर बाबा दोस्त की पुत्री है। ख़्वाजः मुअज्ज़म बादशाह के सामने खड़े थे। उन्होंने कहा कि यह लड़का हमारा नातेदार होगा और हमीदाबानू बेगम को कहा कि यह भी हमारी नातेदार होगी।

उस समय हमीदा बानू बेगम बहुधा मिर्ज़ा के महल में रहती थीं। दूसरे दिन बादशाह फिर माता दिलदार बेगम को देखने आए और कहा कि मीर बाबा दोस्त मेरे अपने हैं। अच्छा हो कि उसकी पुत्री का हमसे विवाह कर दो। मिर्ज़ा हिंदाल ने विनती की कि मैं इस लड़की को बहिन और पुत्री की नाईं समझता हूँ, आप बादशाह हैं स्यात् प्रेम न स्थायी रहे तो दुःख का कारण[2] होगा।

---

(१) सेना को बक्खर का घेरा किए हुए छोड़कर यादगार नासिर के पड़ाव डाबिंला होते गए थे। गुलबदन बेगम यद्यपि काबुल में थीं पर ऐसा वर्णन लिखा है मानों आँख देखी बातें थीं।

(२) हुमायूँ के पास राज्य और कोष के नहीं होने पर कटाक्ष सा किया गया है जो आगे दानमेह की बात चलने से ठीक ज्ञात होता है। हमीदा बेगम की अनिच्छा से मालूम पड़ता है कि वह किसी और से प्रेम रखती थी या वह हुमायूं को ही पसंद नहीं करती थी क्योंकि उस समय हमीदा बेगम की अवस्था चौदह वर्ष की और हुमायूँ की तेंतीस

बादशाह क्रुद्ध हो उठकर चले गए। इसके अनंतर माता ने एक पत्र लिखकर भेजा कि लड़की की माता का भी इससे पहले ही विचार था। आश्चर्य्य है कि आप थोड़े में ही क्रोधित हो चले गए। बादशाह ने उत्तर में लिख भेजा कि आपके कथन से हम बड़े प्रसन्न हुए, जो कुछ वे कहते हैं वह हमें मंजूर है और दानमेह को जो उन्होंने लिखा है वह ईश्वर की कृपा से इच्छानुसार ही होगा। हम आपका रास्ता देख रहे हैं। माता जाकर बादशाह को लिवा लाईं। उस दिन मजलिस थी। इसके अनंतर वे अपने स्थान पर चले आए। दूसरे दिन बादशाह फिर आए और कहा कि आदमी भेजकर हमीदा बानू बेगम को बुलवाइए। माता ने आदमी भेजे पर हमीदा बानू बेगम नहीं आईं और कहलाया कि यदि भेंट करने को बुलाया है तो उस दिन मैं स्वयं सेवा करके प्रतिष्ठित हो चुकी हूँ अब क्यों आऊँ?

बादशाह ने दूसरी बार सुभान क़ुली को भेजा कि मिर्ज़ा हिंदाल से जाकर कहो कि बेगम को भेज दें। मिर्ज़ा ने कहा कि मैंने बहुत कहा पर नहीं जातीं, तुम स्वयं जाकर कहो। सुभान क़ुली ने जाकर कहा तब बेगम ने उत्तर दिया कि

वर्ष की थी तिसपर वह अफ़ीमची और कई विवाह कर चुका था। जो कुछ कारण रहा हो पर यह अनिच्छा ऐसी दृढ़ थी कि हुमायूँ के फिर बादशाह होने, प्रसिद्ध अकबर की माता और इतने दिनों के सुख मिलने पर भी वह याद रही और लिखी गई। इस ग्रंथ के लिखने के समय गुलबदन बेगम और हमीदा बेगम दोनों की अवस्था साठ वर्ष से अधिक हो चुकी थी।

बादशाहों से भेंट करना एक बार ही नीतियुक्त है दूसरी बार ठीक नहीं है, मैं नहीं जाऊँगी। सुभान क़ुली ने बेगम से यह बात सुनकर आकर कह दी। बादशाह ने कहा यदि अयोग्य है तो उसे योग्य बनाऊँगा।

निदान चालीस दिन तक हमीदा बानू बेगम ने बहाना किया और नहीं माना। अंत में माता दिलदार बेगम ने समझाया कि किसीसे विवाह करना ही होगा अच्छा होता कि बादशाह से होवे। बेगम ने कहा कि अवश्य ऐसे मनुष्य से विवाह होगा कि जिसकी गर्दन मेरा हाथ छू सके और न कि ऐसे जिसके कि दामन को भी मैं न छू सकूँ। माता ने उसे फिर बहुत समझाया।

अंत में चालीस दिन के अनंतर सन् ६४८ हि० के जमादिउल्अव्वल महीने में पातर स्थान में सोमवार को दोपहर के समय बादशाह ने इस्तरलाब ले लिया और अच्छे साइत में मीर अबुलबक़ा को बुलाकर आज्ञा दी कि निकाह पढ़ाओ। दो लाख रुपिया मीर अबुलबक़ा को विवाह कराई दिया गया। विवाहोपरांत वहाँ तीन दिन और रहे और तब कूच कर नाव से बक्खर चले।

एक महीना बक्खर में रहे तब मीर अबुलबक़ा को सुलतान बक्खरी के यहाँ भेजा, जहाँ वह बीमार होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ[1]।

---

(१) जब मिर्ज़ा यादगार नासिर ने कंधार जाने की इच्छा की तब हुमायूँ ने इसे समझाने को भेजा। जब वह लौटते समय नदी के पार

अंत में मिर्ज़ा हिंदाल को कंधार जाने की छुट्टी[1] दी गई। मिर्ज़ा यादगार नासिर को अपने स्थान लरे में छोड़कर वे स्वयं सेहवन[2] को चले जहाँ से छ सात दिन के रास्ते पर ठट्टा है। वहाँ का दुर्ग बड़ा दृढ़ है और बादशाही नौकर मीर अलैकः[3] उसमें था। थोड़े तोपवाले ऐसे थे कि किसी का दुर्ग के पास जाना कठिन था। कुछ शाही मनुष्यों ने मोर्चे बाँधकर और पास पहुँचकर उसको समझाया कि ऐसे समय विद्रोह करना ठीक नहीं है। मीर अलैकः ने नहीं माना तब खान लगाकर दुर्ग के एक बुर्ज को उड़ा दिया गया तिसपर भी दुर्ग को न ले सके। अन्न महँगा होगया था इससे बहुधा आदमी भाग रहे थे। छ सात महीने वहाँ रहे और मिर्ज़ा शाह हुसेन

हो रहा था तब शाह हुसेन के सैनिकों ने नाव पर तीर चलाकर उसे मार डाला (तबक़ाते-अकबरी)।

(१) कंधार के सूबेदार क़रचाखां के बुलाने पर सन् १५४१ ई० के अंत में हिंदाल वहाँ चला गया। यह छुट्टी की बात गुलबदन के भ्रातृ स्नेह का नमूना है।

(२) हुमायूँ नावों से ठट्टा जा रहा था पर रास्ते में दुर्ग सेहवन से निकले हुए सैनिकों के एक झुंड पर इसके सैनिकों ने नावों से उतरकर आक्रमण किया और परास्त कर भगा दिया। उन सैनिकों ने दुर्ग लेना सहज बताकर घेरने की सम्मति दी जो मान ली गई (तबक़ाते-अकबरी)।

(३) मीर अलैकः अर्गून था और शाह हुसेन का अफसर था। एक समय सभी अर्गून बाबर के अधीन थे। हुमायूँ के आक्रमण पर शाह हुसेन ने उसे इस पद पर नियुक्त किया था और वह हुमायूँ के कंप में से होता हुआ दुर्ग में चला गया था।

विद्रोह करके चारों ओर से सैनिकों को पकड़वाकर अपने मनुष्यों को सौंपता कि ले जाकर समुद्र में डाल दो। तीन सौ चार सौ मनुष्यों को एकत्र कर नाव में बैठाकर समुद्र में छोड़ देते थे। इस प्रकार दस सहस्र मनुष्य समुद्र में फेंके गए।

इसके अनंतर जब बादशाह के पास भी थोड़े आदमी बच गए तब वह (शाह हुसेन) कुछ नावों में तोप बंदूक भरवाकर स्वयं ठट्टा से आया। सेहवन दुर्ग नदी के पास ही बना हुआ है। (मीर अलीक:) बादशाह की नावों को सामान सहित लेगया[1] और आदमी से कहला भेजा कि निमक का विचार करता हूँ, झट कूच करिए। बादशाह उपायहीन होकर बक्खर लौट गए।

जब बक्खर के पास आए और उसमें पहुँचने भी नहीं पाए थे कि उसके पहलेही मिर्ज़ा हुसेन समंदर ने मिर्ज़ा याद-गार नासिर से कहला भेजा था कि यदि बादशाह लौटकर बक्खर[2] आवें तो मत आने देना क्योंकि वह तुम्हारा है। हम भी तुम्हारी ओर हैं और अपनी पुत्री को तुम्हें देंगे[3]।

---

(१) मिर्ज़ा यादगार नासिर को अपनी ओर मिलाकर शाह हुसेन ने उसे हुमायूँ की सहायता करने से रोका और सामान लानेवाली नावों को भी स्वयं अधिकृत कर लिया।

(२) मिर्ज़ा रुहरी में था और उसका दुर्ग पर अधिकार नहीं था। अन्य वृत्तांत 'हुमायूँ और बाबर' जिल्द २ पृ० २२६ में देखिए।

(३) उसने लिखा कि हम वृद्ध हुए और पुत्र है नहीं; तुम्हें अपनी पुत्री से विवाह कर अपना कोष देंगे, उत्तराधिकारी बनावेंगे और गुज-रात-विजय में सहायता देंगे (अकबरनामा जि० २, पृ० २१४)।

मिर्ज़ा यादगार नासिर ने उसकी बात पर भरोसा करके बादशाह को बक्खर में नहीं आने दिया और चाहा कि धोखे या युद्ध का बर्त्ताव करे।

बादशाह ने दूत भेजा कि बाबा तुम हमारे पुत्र के समान हो और हम तुम्हें अपना प्रतिनिधि बनाकर गए थे कि यदि हमपर कुछ दुर्दिन आवेगा तो तुम सहायक होगे पर अब तुम अपने नौकरों की कुसम्मति से ऐसा बर्ताव कर रहे हो। ये निमकहराम नौकर तुमसे भी स्वामिभक्ति नहीं निबाहेंगे। बादशाह ने बहुत कुछ उपदेश कहला भेजा पर कुछ भी लाभ नहीं हुआ। अंत में बादशाह ने कहलाया कि अच्छा हम राजा मालदेव[1] के पास जाते हैं और यह देश तुम्हें देते हैं पर शाह हुसेन तुम को भी यहाँ नहीं छोड़ेगा। हमारी बात याद रखना।

मिर्ज़ा यादगार नासिर से यह बात कहलाकर जैसलमेर होते हुए वे मालदेव की ओर चले। कुछ दिन के अनंतर राजा मालदेव के राज्य की सीमा पर के दुर्ग दिलावर (दिरावल) तक पहुँचे, जहाँ दो दिन ठहरे। दाना घास नहीं मिला तब वहाँ से जैसलमेर की ओर चले। जब जैसलमेर के पास पहुँचे तब वहां के राजा[2] ने रास्ता रोकने को सेना भेजी जिससे युद्ध हुआ। बादशाह कुछ मनुष्यों के साथ सड़क के एक ओर

---

(१) यह मारवाड़ नरेश थे जिनकी राजधानी जोधपुर थी। यह राठौर-वंशीय थे।

(२) अबुलफ़ज़ल ने राय लूनकरण नाम लिखा है।

चले गए। इस युद्ध में कई मनुष्य घायल हुए जैसे शाहिमख़ाँ जलायर का भाई लोश बेग, पीर मुहम्मद अख़्त: और रोशंग तोशकची आदि[1]। अंत में विजय हुई और काफ़िर लोग भागकर दुर्ग में चले गए। बादशाह उस दिन साठ कोस चलकर एक तालाब पर उतरे। यहाँ से सातलमेर गए। वहाँ के मनुष्यों ने उस दिन बहुत दुख दिया जब तक मालदेव के अधीनस्थ परगन: फालोदी[2] में पहुँचे। राजा मालदेव जोधपुर में थे। उसने एक कवच और एक ऊँट-बोझ अशर्फ़ी बादशाह के पास भेजकर बहुत उत्साह दिया कि अच्छे आए, आपको बीकानेर देता हूँ। बादशाह सुचित्त होकर बैठ गए और अतगा ख़ाँ (शमशुद्दीन मुहम्मद ग़ज़नवी) को मालदेव के पास भेजा कि क्या उत्तर[3] देता है ?

भारत (उत्तरी) के उस पराजय और पराभव के समय मुल्ला सुर्ख़ पुस्तकाध्यक्ष ने मालदेव के राज्य में जाकर नौकरी कर ली थी। उसने पत्र भेजा कि खबरदार सहस्र बार खबरदार कभी आगे मत बढ़िए और जहाँ ठहरे हों वहाँ से कूच करिए क्योंकि मालदेव की इच्छा आपको पकड़ने की है। उसकी प्रतिज्ञा का विश्वास मत रखिए क्योंकि यहाँ शेरख़ाँ का एक दूत पत्र ले कर आया था कि जिस प्रकार हो सके बादशाह को पकड़

---

(१) निज़ामुद्दीन अहमद का पिता मुक़ीम हरवी भी इस युद्ध में था।

(२) जोधपुर से ३० कोस उत्तर और पश्चिम की ओर है।

(३) अर्थात् जो फर्मान भेजा था उसका क्या उत्तर मिलता है ?

लो और यदि यह कार्य करोगे तो नागौर, अलवर और जो स्थान चाहोगे तुम्हें देंगे। अतगा खाँ ने भी आकर कहा कि ठहरने का समय नहीं है। दूसरी निमाज़ के समय बादशाह ने वहाँ से कूच किया।

जिस समय बादशाह घोड़े पर चढ़ रहे थे उस समय दो जासूसों[1] को पकड़कर सामने लाए। दोनों से अभी प्रश्न हो रहा था कि एकाएक अपने हाथों को छुड़ाकर एक ने महमूद गुर्दबाज़ के कमर से तलवार खींचकर पहले उसीको घायल किया। इसके अनंतर अब्दुलबाक़ी ग्वालिअरी को मारा। दूसरा भी एक के मियान से छूरा खींचकर युद्ध को तैयार हुआ। कई मनुष्यों को घायल कर बादशाह के घोड़े को मार डाला। अर्थात् मारे जाने के पहले दोनों ने बहुत हानि पहुँचाई। उसी समय शोर मचा कि मालदेव आ पहुँचा। बादशाह के पास हमीदा बानू बेगम की सवारी के योग्य कोई घोड़ा नहीं था इस लिए तार्दी बेग से माँगा। स्यात् उसने नहीं दिया तब बादशाह ने कहा कि मेरे लिए जवाहिर[2] आफ़ताबची का ऊँट तैयार करो हम उस पर सवारी करेंगे और बेगम मेरे घोड़े पर सवार होंगी। जान पड़ता है कि नादिम बेग ने यह सुन-

---

(१) जौहर लिखता है कि दो ग्रामीण रास्ता दिखलाने के लिए पकड़े गए थे जिन्होंने यह सब कार्य्य किया।

(२) लिखने में एक अलिफ़ अधिक होने से जवाहिर होगया है पर ठीक नाम जौहर है जिसने वाक़िआते-हुमायूँनी लिखा है।

कर कि बादशाह ने अपना घोड़ा बेगम की सवारी को नियुक्त किया है और स्वयं ऊँट पर चढ़ने का विचार करते हैं अपनी माता को ऊँट पर सवार कराके उसका घोड़ा बादशाह को भेंट में दे दिया।

बादशाह वहाँ से राह दिखलाने को एक मनुष्य साथ लेकर सवार हो अमरकोट चले। हवा बड़ी गर्म थी और चौपाए घुटनों तक बालू में धंसे जाते थे। सेना के पीछे मालदेव भी पास पहुँचे। फिर आगे बढ़े और भूखे प्यासे चलने लगे। बहुधा स्त्री और पुरुष पैदल ही थे।

जब मालदेव की सेना पास पहुँची तब बादशाह ने ईसन-तैमूर सुलतान[१], मुनइम ख़ाँ[२] और दूसरों को आज्ञा दी कि तुम लोग धीरे धीरे आओ और शत्रु पर आँख रखो जिसमें हम लोग कुछ कोस आगे बढ़ जावें। वे लोग ठहर गए और रात्रि होजाने से रास्ता भूल गए[३]। बादशाह रात्रि भर चले। सबेरे जलाशय मिला। घोड़ों को तीन दिन से पानी नहीं मिला था। बादशाह वहीं उतरे थे कि मनुष्य दौड़ते हुए आए कि हिंदुओं की बहुत बड़ी घुड़सवार और ऊँटसवार सेना आ पहुँची।

बादशाह ने शेख़ अली बेग, रौशन कोका, नदीम कोका,

---

(१) गुलचेहरः बेगम का पति था।

(२) अकबर के समय इसे ख़ानख़ाना की पदवी मिली थी।

(३) जौहर लिखता है कि रसद बटोरने को ये भेजे गए थे जो राह भूल गए और रेगिस्तान में एक तालाब पर मिले थे।

मीरवली के भाई मीर पायंदः मुहम्मद और दूसरों को फ़ातिहा पढ़वाकर भेजा कि जाकर काफ़िरों से युद्ध करें। बादशाह को प्रतीत हुआ कि इन लोगों से ईसन-तैमूर सुलतान, मुनइम खाँ, मिर्ज़ा यादगार[१] आदि जिन्हें छोड़ आए थे मारे गए या काफ़िरों के हाथ पकड़े गए जिससे कि यह झुंड उनका अंत करके हम पर आया है। बादशाह फिर स्वयं सवार होकर कई मनुष्यों के साथ कंप छोड़कर आगे बढ़े। उस झुंड में से जिसे बादशाह ने फ़ातिहा पढ़वाकर युद्धार्थ भेजा था शेख अली बेग ने राजपूतों के सर्दार को तीर मारकर गिरा दिया और दूसरों ने औरों पर तीर चलाया। काफ़िर भाग गए और विजय हुई। कई मनुष्यों को जीवित ही पकड़कर लाए। कंप धीरे धीरे जा रहा था पर बादशाह दूर जा चुके थे। विजय कर ये मनुष्य कंप में आ मिले।

बेहबूद नामक एक चोबदार था जिसे बादशाह के पीछे दौड़ाकर (कहला) भेजा कि बादशाह धीरे धीरे जावें। ईश्वर की कृपा से विजय हुई और काफ़िर भाग गए। बेहबूद ने अपने को बादशाह के पास पहुँचाकर शुभ सूचना दी[२]। बादशाह उतर पड़े और थोड़ा जल[३] भी पैदा हुआ परंतु वह इसी विचार

---

(१) यह बेगा बेगम के पिता और हुमायूँ के मामा होंगे क्योंकि यादगार नासिर मिर्ज़ा इस समय सिंध में थे।

(२) शेख अली बेग ने दो शत्रुओं के सिर भी भेजे थे जो उसने हुमायूँ के पैरों के नीचे डाल दिए थे।

(३) वही तालाब जिसका जौहर ने ज़िक्र किया है।

में थे कि अमीरों को क्या हुआ ? इतने में दूर से कुछ सवार दिखलाई पड़े। फिर डर हुआ कि कहीं मालदेव हो। मनुष्य भेजा कि समाचार लावे जो दौड़ता हुआ आया कि ईसन-तैमूर सुलतान, मिर्ज़ा यादगार, मुनइमखाँ सब सही सलामत आते हैं जो रास्ता भूल गए थे। उन सब के पहुँचने पर[1] बादशाह प्रसन्न हुए और ईश्वर को धन्यवाद दिया।

सबेरे कूच किया। तीन दिन और जल नहीं मिला जिसके अनंतर कुँओं पर पहुँचे। वे कुएँ बहुत गहरे थे जिनपर उतरे थे। उन कुँओं का जल बहुत लाल था। एक कुएँ पर बादशाह, दूसरे पर तर्दीबेगखाँ, तीसरे पर मिर्ज़ा यादगार, मुनइमखाँ और नदीम कोका और चौथे पर ईसन-तैमूर सुलतान, ख़्वाजः ग़ाज़ी और रौशन कोका ठहरे।

हर एक डोल जब कुएँ के बाहर पास पहुँचता था तो मनुष्यगण उस डोल में अपने को गिरा देते थे जिससे रस्सी टूट जाती थी और पाँच छ मनुष्य उसीके साथ कुएँ में गिर पड़ते थे। बहुत से मनुष्य प्यास के मारे मर गए और नष्ट हो गए। जब बादशाह ने देखा कि मनुष्यगण प्यास के कारण

---

(१) इसी समय मालदेव के दो दूत संदेश लाए कि बादशाह हमारे राज्य में बिना बुलाए चले आए और यह जानकर भी कि हिंदू राज्य में गाय नहीं मारी जाती कई गायों को मार डाला है। इन प्रांतों में घुस आए हैं और अब राजा के हाथ में है इससे अब वैसा फल पावें। (जौहर)।

कुएँ में गिरे पड़ते हैं तब अपनी सुराही में से सबको पानी पिलाया। जब सब पेट भर पी चुके तब दो पहर की निमाज़ के समय बादशाह ने कूच किया।

एक दिन रात चलकर सराय में पहुँचे जहाँ बड़ा तालाब था। घोड़े और ऊँट तालाब में घुस गए। इन्होंने इतना पानी पिया कि उनमें से कितने मर गए। घोड़े कम रह गए पर ख़च्चर और ऊँट थे। यहाँ से अमरकोट[1] पहुँचने तक जल बराबर मिलता गया। यह स्थान बहुत अच्छा है और यहाँ बहुत से तालाब हैं। राणा[2] ने बादशाह के स्वागत को आकर और दुर्ग के भीतर लिवा जाकर उन्हें अच्छी जगह पर उतारा और अमीरों के आदमियों को दुर्ग के बाहर स्थान दिया।

बहुत सी वस्तुएँ यहाँ बड़ी सस्ती थीं। एक रुपए की चार बकरी मिलती थी। राणा ने बकरी के बच्चे आदि बहुत से भेंट में दिए और ऐसी सेवा की कि कौन जिह्वा उसका वर्णन कर सकती है। वहाँ कुछ दिन अच्छे प्रकार व्यतीत हुए।

इसके अनंतर कोष समाप्त होजाने पर बादशाह ने तर्दी बेग ख़ाँ से सिक्का उधार माँगा। उसके पास बहुत सुवर्ण था।

---

(१) सिंध के रेगिस्तान में यह एक नगर और दुर्ग है जो हैदराबाद से ठीक बीस कोस पूर्व्व है। इतनी कष्टदायक यात्रा के बाद इन लोगों को और मुख्य कर अकबर की माता को यह स्थान स्वर्ग सा मालूम पड़ा होगा। २२ अगस्त सन् १५४२ ई० को ये लोग वहाँ पहुँचे।

(२) यहाँ के उस समय के राणा का नाम प्रसाद था (जौहर)।

दस में दो[1] के हिसाब से उसने अस्सी हज़ार अशर्फी ऋण दी। बादशाह ने इसे कुल सेना में बाँट दिया। राणा और उसके पुत्रों को कमरबंद और सरोपा दिया। कई मनुष्यों ने नए घोड़े खरीदे।

राणा के पिता को मिर्ज़ा शाह हुसेन ने मारडाला था। इसी कारण उसने दो तीन सहस्र सवार इकट्ठे किए थे जिन्हें उसने बादशाह के साथ[2] कर दिया। बादशाह फिर बक्खर को चले और अमरकोट में थोड़े आदमी, संबंधी और घरवालों को छोड़ गए। हरम के रक्षार्थ ख़्वाजः मुअज्ज़म को छोड़ा।

हमीदा बानू बेगम गर्भवती थीं। बादशाह को गए तीन दिन हुए थे कि चार रज्जब सन् ९४९ हि०[3] को रविवार के दिन सबेरे बादशाह आलमपनाह आलमगीर जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर ग़ाज़ी का जन्म हुआ। चंद्रमा सिंह राशि में थे। अचल राशि में उत्पन्न होना बहुत अच्छा है और ज्योतिषियों

---

(१) अर्थात् बीस सैकड़े काटकर अस्सी हजार देकर बादशाह पर एक लाख का ऋण चढ़ाया। जौहर लिखता है कि बादशाह ने सब सर्दारों को अपने पास बुलवाकर बैठा लिया और उनकी गठरियों को अपने विश्वासी नौकरों से खुलवाकर उनमें जो माल मिला उसे मँगवाकर आधा स्वयं ले लिया और आधा उनके स्वामियों को लौटा दिया।

(२) दो सहस्र अपने और पाँच सहस्र अपने मित्रों के सवारों को साथ भेजा था (जौहर)।

(३) १५ अक्तूबर सन् १५४२ ई०। जौहर शाबान के पूर्णचंद्र की रात्रि को जन्म लिखता है।

ने भी कहा कि इस साइत में जो पुत्र होता है वह भाग्यवान और दीर्घ आयुवाला होता है। बादशाह पंदरह कोस गए थे कि तर्दी मुहम्मद ख़ाँ ने समाचार पहुँचाया। बादशाह बड़े प्रसन्न हुए[1] और इस वृत्तांत के खुशी और बधाई में तर्दी मुहम्मद ख़ाँ के पुराने अपराधों को क्षमा कर दिया।

लाहौर में जो स्वप्न देखा था उसीके अनुसार उन्होंने लड़के का नाम जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर बादशाह रखा। वहाँ से कूच कर बक्खर को चले और इनके पास दस सहस्र मनुष्य इकट्ठे होगए जिनमें राणा के, आसपास के, सूदमः (सोढ़ा) और समीचा जाति के मनुष्य थे। पर्गना जून में पहुँचे जहाँ मिर्ज़ा शाह हुसेन का एक दास[2] कुछ सवारों सहित था। वह भाग गया। वहाँ एक बहुत अच्छा आईना बाग़ था जहाँ बादशाह उतरे। वहाँ के गाँवों को उन्होंने अपने मनुष्यों में जागीर रूप में बाँट दिया। जून से ठट्टा छ दिन के रास्ते पर है। बादशाह उस स्थान में छ महीना[3] रहे और अमरकोट आदमी भेजकर वहाँ से हरमवालों और कुल मनुष्यों को बुलवा लिया। उस समय

---

(१) इसी समय बादशाह ने सरदारों में कस्तूरी बाँटी थी।

(२) जानी बेग जो पहले अमरकोट का सूबेदार रह चुका था और प्रसिद्ध क़ज़्ज़ाक़ था बहुत से सवारों सहित युद्धार्थ तैयार था। राणा के जाट सवारों और मुग़लों ने आक्रमण कर उसे भगा दिया था (जौहर)।

(३) दूसरे लेखकों ने नौ महीना लिखा है।

जब जून में आए तब जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर बादशाह की अवस्था छ महीने[1] की थी।

जो झुंड हरमवालों के साथ इधर उधर से आया था बँट गया। राणा[2] और तर्दी मुहम्मदखाँ[3] के बीच कहा सुनी होने के कारण जो मन मुटाव होगया था उससे वह अर्द्धरात्रि को कूच कर अपने देश को लौट गया। सूक्ष्म: और समीचा भी उसी के साथ चले गए। बादशाह अपने साथवालों के सहित बच गए।

बादशाह ने शेख़ अली बेग को जो वीर पुरुष था मुज़फ़्फ़र बेग तुर्कमान के साथ जाज्का नामक बड़े परगने की ओर भेजा था। मिर्ज़ा शाह हुसेन ने उस पर कुछ सेना भेजी और दोनों में बड़ा युद्ध हुआ। अंत में मुज़फ़्फ़र बेग परास्त होकर भागा और शेख अली बेग बहुतों के साथ मारा जाकर नष्ट हो गया।

ख़ालिद बेग[4] और शाहिम ख़ां जलायर के भाई लौश बेग

---

(१) जौहर लिखता है कि २० रमज़ान को जिस दिन बादशाह ने अकबर को गोद लिया था उस दिन उसकी अवस्था ३५ दिन की थी। इससे जान पड़ता है कि हमीदा और अकबर अच्छे यात्री थे।

(२) शाह हुसेन ने दूत के हाथ ख़िलअत आदि राणा के पास भेजकर कहलाया कि बादशाह का साथ छोड़ दे परंतु उसने वह सब बादशाह के सामने लेजाकर रख दिया जो आज्ञानुसार कुत्ते को पहिराकर लौटा दिया गया (जौहर)।

(३) जौहर ख़्वाजा ग़ाज़ी से झगड़ा होना बतलाता है।

(४) निज़ामुद्दीनअली ख़लीफ़ा बर्लास और सुलतानम का पुत्र था जिसकी गुलबर्ग[1] बेगम सहोदरा बहिन या सौतेली बहिन रही होगी।

के बीच में कहा सुनी होगई जिसमें बादशाह ने लौश बेग का पक्ष लिया। इस कारण ख़ालिद बेग अपने आदमियों सहित भागकर मिर्ज़ा शाह हुसेन के पास चला गया। बादशाह ने उसकी माता सुलतानम को कारागार में सौंप दिया। इससे गुलबर्ग बेगम दुखित हुई, तब अंत में उसके दोष को क्षमा करके उनके साथ मक्का बिदा किया। कुछ ही दिन के अनंतर लौश बेग भी भाग गया जिस पर बादशाह ने उसे श्राप दिया कि हमने उसके लिए ख़ालिद बेग से कड़ा वर्ताव किया जिस कारण वह स्वामिभक्ति त्याग कर स्वामिद्रोही होगया। वह जवान ही मर जायगा। अंत में ऐसाही हुआ कि पंदरह दिन के अनंतर जब वह नाव में सोया हुआ था उस समय उसके दास ने छूरे से उसे मार डाला[1]। यह सुनने पर बादशाह दुखित और विचारयुक्त हुए।

शाह हुसेन नदी से बहुत सी नावें जून के पास ले आया था और स्थल पर बहुधा दोनों ओर के सैनिकों में युद्ध होता रहता था जिससे दोनों ओर के सैनिक मारे जाते थे। प्रतिदिन बादशाही सैनिकगण भागकर शाह हुसेन से जाकर मिल रहे थे। इन्हीं में से एक लड़ाई में मुल्ला ताजुद्दीन मारा गया जिसे विद्या रूपी मोती समझकर बादशाह बड़ी कृपा दिखाते थे।

---

(१) शाह हुसेन ने उसे एक दास भेंट में दिया था जिसकी नाक किसी दोष पर लौश या तर्श बेग ने काट ली। इसके तीन दिन बाद दास ने इसे मारकर बदला चुकाया (जौहर)।

तर्दी मुहम्मद ख़ाँ और मुनइम ख़ाँ के बीच कहा सुनी हुई जिससे मुनइम ख़ाँ भी भाग गया। थोड़े अमीर बच गए जिन में तर्दी मुहम्मद ख़ाँ, मिर्ज़ा यादगार, मिर्ज़ा पायंदा मुहम्मद, महम्मद वली, नदीम कोका, रोशन कोका, ख़दंग एशक आग़ा[1] और कई दूसरे भी बादशाह की सेवा में रह गए थे। इसी समय समाचार आया कि बैराम ख़ाँ गुजरात से आता है और पर्गना जाज्का (हजकान) में पहुँचगया है। बादशाह प्रसन्न हुए और ख़दंग एशक आग़ा को कई मनुष्यों के साथ स्वागतार्थ भेजा।

इसी समय शाह हुसेन ने सुना कि बैराम ख़ाँ आता है तब कई मनुष्यों को भेजा कि बैराम ख़ाँ को पकड़ लेवें। ये लोग निशंक एक स्थान पर उतरे थे कि वे आ टूटे। ख़दंग एशक आग़ा मारा गया और बैराम ख़ाँ कई मनुष्यों के साथ बचकर बादशाह की सेवा में आ सम्मानित हुआ।

इसी समय क़राच:ख़ाँ के प्रार्थना-पत्र बादशाह और मिर्ज़ा हिंदाल के नाम आए कि बहुत समय हुआ कि आप बक्खर के पास ठहरे हुए हैं और उस समय में शाह हुसेन मिर्ज़ा ने राजभक्ति न दिखलाकर द्रोह ही किया। इधर ईश्वरी कृपा से मार्ग साफ है और यह अच्छा होगा यदि बादशाह कुशलपूर्वक यहाँ चले आवें। अच्छी और ठीक सम्मति यही है और यदि बादशाह न आवें तो तुम अवश्य चले आओ। बादशाह ने देरी कर दी

(१) स्यात् मेवा जान का पिता ख़दंग चोबदार था। बैराम ख़ाँ १२ अप्रैल सन् १५४३ ई० (मुहर्रम ७, सन् ९५० हि०) को आया था।

थी इससे उसने मिर्ज़ा हिंदाल का स्वागत करके कंधार उसे भेंट कर दिया (सन् १५४१ ई० के जाड़े के आरंभ में)।

मिर्ज़ा अस्करी ग़ज़नी में थे जिन्हें मिर्ज़ा कामराँ ने पत्र भेजा कि क़राच: खाँ ने कंधार मिर्ज़ा हिंदाल को दे दिया जिस का उपाय करना आवश्यक है। मिर्ज़ा कामराँ इस विचार में थे कि कंधार मिर्ज़ा हिंदाल से ले लेवें।

इसी समय बादशाह इन समाचारों को सुनकर अपनी बूआ ख़ानज़ाद: बेगम[२] के पास गए और बहुत कहा कि मुझ पर कृपा करके आप कंधार जावें और मिर्ज़ा कामराँ और मिर्ज़ा हिंदाल को समझावें कि उज़बेग और तुर्कमान तुम लोगों के पास ही हैं तब ऐसे समय में हमारे और तुम लोगों के बीच में मित्रता ही ठीक है। मिर्ज़ा कामराँ को जो कुछ हमने लिखा है यदि वह वैसा करना मान लें तब जो कुछ वह चाहते हैं हम भी वैसाही करेंगे।

बेगम के कंधार पहुँचने के चार दिन पीछे मिर्ज़ा कामराँ

(१) पहले की हुई घटना का यहाँ आवश्यकता पड़जाने से ध्यान आगया है जिससे उसका वर्णन कर दिया है।

(२) इससे मालूम होता है कि यह भी हुमायूँ के साथ सिंध में थीं। किसी और इतिहासकार ने इनके भेजे जाने आदि का कुछ ज़िक्र नहीं किया है। वह हिंदाल के साथही कंधार से काबुल गई होंगी जब कि हिंदाल ने कंधार मिर्ज़ा कामरां को सौंप दिया था। इनके पति महदी ख्वाजा का बाबर की मृत्यु के बाद ख़लीफ़ा की तरह कहीं भी नाम नहीं आया है। अबुलफ़ज़ल ने उसके मक़बरे का ज़िक्र किया है।

भी पहुँचे और प्रति दिन कहते कि ख़ुतबा मेरे नाम पढ़ा जावे। मिर्ज़ा हिंदाल का कथन था कि ख़ुतबा बदलने का क्या अर्थ है ? बाबर बादशाह ने अपने जीवन ही में हुमायूँ बादशाह को बादशाही देदी थी, अपना युवराज भी बनाया था, हम लोगों ने भी यह मान लिया था और अब तक उन्हींके नाम ख़ुतबा पढ़ा जाता है। अभी ख़ुतबा बदलने की कोई राह नहीं है[1]। मिर्ज़ा कामराँ ने दिल्दार बेगम[2] को पत्र लिखा कि हम काबुल से आपको याद करके आए हैं पर आश्चर्य्य है कि आप को आए हुए इतने दिन हो गए पर हमसे आपने भेंट नहीं की। जैसे आप मिर्ज़ा हिंदाल की माता हैं उसी प्रकार हमारी भी माता हैं। अंत में दिल्दार बेगम उनसे मिलने आईं। मिर्ज़ा कामराँ ने कहा कि मैं अब तुमको नहीं छोड़ूंगा जब तक तुम मिर्ज़ा हिंदाल को नहीं बुलाओगी। दिल्दार बेगम ने कहा कि ख़ानज़ाद: बेगम तुम्हारी पूज्य हैं और हम तुम सबसे बड़ी हैं इससे ख़ुतबा के बारे में उन्हींसे पूछो। अंत में आक: से कहा। ख़ानज़ाद: बेगम ने उत्तर दिया कि यदि हमसे पूछते हो तब जिस प्रकार बादशाह बाबर ने निश्चित किया है, हुमायूँ बादशाह को बादशाही दी है और अब तक तुम लोगों

(१) दिल्ली में हिंदाल ने अपने नाम ख़ुतबा पढ़वाने में इतना तर्क किया होगा या नहीं उसमें भी संदेह है पर उस घटना को गुलबदन बेगम, कामराँ आदि सभी भूल गए से मालूम होते हैं।

(२) यह भी पुत्र के साथ क़ंधार में रही होंगी।

ने भी जिसके नाम ख़ुतबा पढ़ा है उसीको अब भी बड़ा समझकर आज्ञा मानते रहो।

फल यही हुआ कि मिर्ज़ा कामराँ चार महीने तक कंधार को घेरे रहे और ख़ुतबे के लिए तर्क करते रहे। अंत में निश्चित हुआ कि अच्छा अभी बादशाह दूर हैं ख़ुतबा मेरे नाम पढ़ो जब वे आवेंगे तब उनके नाम पढ़ना। घेरा डाले बहुत दिन हो गए थे और मनुष्य बहुत संकट में थे इससे आवश्यक हुआ कि ख़ुतबा पढ़ा जाय।

मिर्ज़ा कामराँ ने कंधार मिर्ज़ा अस्करी को दिया और मिर्ज़ा हिंदाल से ग़ज़नी देने की प्रतिज्ञा की[1]। पर जब ग़ज़नी आए तब लमग़ानात और दर्रों को मिर्ज़ा हिंदाल को दिया। इस प्रकार प्रतिज्ञाएँ झूठी होने से मिर्ज़ा हिंदाल बदख़्शाँ जाकर ख़ोस्त और अंदर-आब में ठहरे। मिर्ज़ा कामराँ ने दिल्दार बेगम से कहा कि तुम जाकर लिवा लाओ। जब दिल्दार बेगम पहुँची तब मिर्ज़ा हिंदाल ने उत्तर दिया कि मैंने अपने को युद्ध की झंझट से हटा लिया और ख़ोस्त भी एकांत स्थान है इससे यहाँ बैठा हूँ। बेगम ने कहा कि यदि फ़क़ीरी और एकांतवास की इच्छा है तब काबुल भी एकांत स्थान है वहीं स्त्री पुत्रादि के साथ रहो, वही अच्छा है। अंत में बेगम मिर्ज़ा को बलपूर्वक

(१) मुंतख़बुत्तवारीख़ में लिखा है कि मिर्ज़ा हिंदाल को ग़ज़नी देकर लौटा लिया जिसे मिस्टर अर्सकिन अशुद्ध बतलाते हैं पर गुलबदन बेगम अब्दुल्क़ादिर बदायूनी का समर्थन करती हैं।

ले आईं और काबुल में बहुत दिनों तक वह फ़क़ीरों की चाल पर रहे।

अब मिर्ज़ा शाह हुसेन ने बादशाह के पास आदमी भेजा कि आपको उचित है कि यहाँ से कूच करके कंधार जावें। बादशाह ने इस बात को मान लिया और उत्तर भेजा कि हमारे कंप में घोड़े ऊँट कम बच गए और यदि तुम घोड़े और ऊंट हमें दो तो हम कंधार जावें। मिर्ज़ा शाह हुसेन ने मान लिया और कहलाया कि जब तुम नदी पार हो जाओगे तब एक सहस्र ऊंट[1] जो उस पार हैं सब तुम्हारे पास भेज देंगे।

बक्खर और सिंध के रास्ते में ख़्वाजा केसक के बारे में जो ख़्वाजा ग़ाज़ी का नातेदार था जो कुछ बातें लिखी गई हैं वह उसी ख़्वाजा केसक के लेख की नक़ल है।

अंत में बादशाह स्त्री, पुत्र, सैनिक आदि के साथ नावों पर सवार हुए[2] और तीन दिन तक नदी पर यात्रा की। उसके राज्य की सीमा पर नवासी नामक गाँव था जहाँ वे उतरे और

(१) तबक़ातअकबरी में लिखा है कि तीस नाव और तीन सौ ऊँट दिया था। जौहर लिखता है कि शाह हुसेन ने कहलाया था कि रती या रनी गांव में तीन सौ ऊँट और दो सहस्र अन्न का बोझ मिलेगा जहाँ से कंधार तक फिर अन्न-कष्ट नहीं होगा। गुलबदन बेगम ने गांव का नाम नवासी लिखा है।

(२) बादशाह के जाने के अनंतर यादगार नासिर को जो शाह हुसेन की चिकनी चिकनी बातों में मग्न बैठा हुआ था पूरा दंड मिला। शाह हुसेन ने उससे प्रत्येक ऊँट के लिये एक और प्रत्येक घोड़े के लिये पांच शाहरुख़ी लेकर उसे अपने राज्य के बाहर निकाल दिया।

सुलतान कुली नामक मुख्य ऊँटवान को भेजा कि ऊँटों को लावे। सुलतान कुली जाकर एक सहस्र ऊँट ले आया। बादशाह ने कुल ऊँटों को सर्दारों, सैनिकों और दूसरों को दे दिया। ये ऊँट ऐसे थे कि मानों इन सबों ने सात पीढ़ी क्या सत्तर पीढ़ी से भी कभी नगर, मनुष्य या बोझ नहीं देखा था। सेना में घोड़ों की कमी थी इससे बहुत से ऊँटों पर सवार हुए और बचे हुए ऊँट बोझ ढोने पर नियुक्त हुए। जहाँ उन ऊँटों पर कोई सवार होता कि वे चट सवार को गिराकर जंगल का रास्ता लेते। बोझ ढोनेवाले ऊँट जिन पर बोझ लादा जा चुका था घोड़े की टापों का शब्द सुनते ही कूद कूदकर बोझ को गिरा देते और स्वयं जंगल को चल देते थे और जिन पर दृढ़ता के साथ बोझ बँधा होता था वे कितनाही कूदते पर जब वह नहीं गिरता था तब उसे लिए ही जंगल को भाग जाते थे[1]।

इस प्रकार जब कंधार को चले तब तक दो सौ ऊँट भाग गए थे। जब सीबी के पास पहुँचे जहाँ शाह हुसेन मिर्ज़ा का मुख्य ऊँटवान महमूद था तब वह उस दुर्ग को दृढ़ कर उसमें जा बैठा। बादशाह सीबी से छ कोस पर उतरे। उसी समय समाचार मिला कि मीर अलादोस्त और बाबा जूजुक[2]

(१) ऊँटों का ऐसा अच्छा वर्णन किसी इतिहासकार ने नहीं किया है।

(२) यह फकीरी नाम है जिसका तुर्की भाषा में 'मिठास लिए हुए' अर्थ है। अबुलफ़ज़ल ने अलादोस्त के साथी का नाम शेख़ अब्दुल-वहाब लिखा है जो ओजपूर्वक वक्तृता देने के लिये प्रसिद्ध था इससे स्यात् उसीका यह नाम पड़ा हो।

काबुल से दो दिन हुए कि सीबी आए हुए हैं और शाह हुसेन मिर्ज़ा के यहाँ जावेंगे। मिर्ज़ा कामराँ ने सिरोपा, अच्छे घोड़े और बहुत से मेवे मिर्ज़ा शाह हुसेन के लिए भेजे हैं और अपने लिए उसकी पुत्री मांगी है।

बादशाह ने ख़्वाजा ग़ाज़ी से स्वयं कहा कि तुम्हारे और अलादोस्त के बीच पिता और पुत्र के समान संबंध है इससे पत्र लिखकर पूछो कि मिर्ज़ा कामराँ का हमारी ओर कैसा विचार है और यदि हम वहाँ जायँ तो वह कैसा वर्त्ताव करेगा। बादशाह ने ख़्वाजा केसक को आज्ञा दी कि सीबी जाकर मीर अलादोस्त से कहो कि यदि आकर हमसे भेंट करें तो अच्छा है। पूर्वोक्त ख़्वाजा केसक जब सीबी को चले तब बादशाह ने कहा कि तुम्हारे आने तक हम कूच नहीं करेंगे।

वह ज्यों सीबी के पास पहुँचा कि मुख्य ऊँटवान महमूद ने उसको पकड़कर पूछा कि किस लिये आए हो? उसने उत्तर दिया कि ऊँट और घोड़ा क्रय करने के लिये। (महमूद ने) कहा कि इसके बग़ल और टोपी में ढूँढ़ो कि कहीं अलादोस्त और बाबा जूजुक को मिलाने के लिये पत्र न लाया हो।

ढूँढ़ने पर उसके बग़ल में से पत्र निकला क्योंकि उसे समय नहीं मिला कि उसे कोने में डाल दे। उसे लेकर पढ़ा और उसको न छोड़कर उसी समय अलादोस्त और बाबा जूजुक को दुर्ग के भीतर लिवा जाकर उन्हें बहुत धमकाया। उन सब ने

(१) संभवतः यह संबंध गुरु शिष्य का रहा होगा।

शपथ खाई कि हमें इसका आना विदित नहीं था और यह मेरे यहाँ पढ़ चुका है। ख्वाजः ग़ाज़ी का हमसे संबंध है और वह मिर्ज़ा कामराँ के यहाँ था इसी कारण उसने पत्र लिखा है। महमूद ने निश्चय किया कि इनको कुछ मनुष्यों के साथ शाह हुसेन के पास भेजदूँ। मीर अलादोस्त और बाबा जूजुक रात्रि भर महमूद के पास रहे और समझा बुझाकर तथा विनती कर छुड़वा दिया।

तीन सहस्र[२] अनार और सौ विही मीर अलादोस्त ने बादशाह के लिये भेजी और पत्र इसलिये नहीं लिखा कि स्यात् किसीके हाथ पड़ जाय। परंतु इतना कहला भेजा कि यदि मिर्ज़ा अस्करी या अमीरगण पत्र भेजें तो काबुल जाना बुरा नहीं है और यदि न भेजें तो काबुल जाना ठीक नहीं है क्योंकि बादशाह स्वयं समझें कि उनके पास सेना कम है अंत में क्या होगा। कैसक ने आकर सब कहा[३]।

बादशाह आश्चर्य और विचार में पड़ गए कि क्या करें और कहाँ जायँ! सम्मति लेने लगे। तर्दीमुहम्मद खाँ और

---

(१) जब तक कामराँ लाहौर में था उस समय तक यह उसका दीवान रहा और जब वह काबुल की ओर और हुमायूँ सिंध को चले तब यह बादशाह के साथ होगया।

(२) सीसद के स्थान पर सेःसद अधिक संभव मालूम होता है जिस का अर्थ तीन सौ होगा।

(३) सीबी की इस घटना का जौहर ने कुछ भी उल्लेख नहीं किया है।

बैरामखाँ ने सम्मति दी कि उत्तर और शाल मस्तान को छोड़ जो कंधार की सीमा पर है और कहीं जाने का विचार करना संभव नहीं है, क्योंकि उन सीमाओं पर बहुत अफ़गान हैं जिन्हें अपनी ओर मिला लेंगे और मिर्ज़ा अस्करी के भागे हुए सेवक और सर्दार भी हमसे आ मिलेंगे।

अंत में यही निश्चित होने पर फ़ातिहा पढ़ा गया और कूच कर कंधार को चले। जब शाल मस्तान के पास पहुँचे तब मौज़ा रली में उतरे पर बरफ़ और पानी बरस चुका था और हवा बहुत ठंढी थी इसलिये ठीक हुआ कि यहाँ से शाल मस्तान चला जावे। दोपहर की निमाज़ के समय एक उज़बेग जवान एक थके हुए दुर्बल टट्टू पर चढ़ा हुआ आ पहुँचा और चिल्लाकर कहने लगा कि बादशाह सवार हों, मैं रास्ते में वृत्तांत कहूँगा क्योंकि समय कम है और अभी बात करना ठीक नहीं है।

---

(१) सीबी से बोलन दर्रे में होते हुए कीटा के पास यह स्थान है।

(२) निज़ामुद्दीन अहमद 'हवाली', अबुलफ़ज़ल 'जिनी' और अर्स्किन 'चूपी' नाम बतलाते हैं। इसने हुमायूँ की सेवा की थी और उससे पुरस्कार भी पाया था। तबक़ातेअकबरी में लिखा है कि उसने आकर बैरामखाँ से पहले कहा जिसने जाकर बादशाह से कहा।

जौहर लिखता है कि उसने पूछने पर कहा कि मेरा नाम जुई बहादुर उज़बेग है और मैं क़ासिम हुसेन सुलतान का भेजा हुआ आया हूँ। इस समाचार के मिलने के अनंतर पहले युद्ध की राय हुई पर अंत में कूच करना ही निश्चय हुआ।

सुनते ही बादशाह उसी समय सवार हुए और चल दिए। जब दो तीर रास्ता निकल गए तब बादशाह ने ख़्वाजः मुअ-ज़्ज़म और बैरामखाँ को भेजा कि हमीदा बानू बेगम को ले आवें। इन लोगों ने आकर बेगम को सवार कराया और इतना भी समय नहीं मिला कि जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर बादशाह को भी साथ ले जायँ[1]। जैसे ही बेगम कंप से निकल-कर गईं कि बादशाह के साथ होवें वैसेही मिर्ज़ा अस्करी दो सहस्र सवारों के साथ आ पहुँचे। शोर मचा और पहुँचते ही कंप में घुसकर पूछा कि बादशाह कहाँ हैं? लोगों ने उत्तर दिया कि देर हुई शिकार खेलने गए हैं। उसने जान लिया कि वह निकल गए तब जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर बादशाह को पकड़कर सब शाही मनुष्यों को कहा कि कंधार चलो[2]। उसने मुहम्मद अकबर बादशाह को अपनी स्त्री सुलतानम बेगम को सौंपा जिसने उनपर बहुत स्नेह और दया दिखाई।

जब बादशाह सवार हुए तब पहाड़ की ओर चार कोस तक चले गए और फिर फुर्ती से आगे बढ़े[3]। उस समय बादशाह की सेवा में ये लोग थे—बैराम खाँ, ख़्वाजः मुअज़्ज़म, ख़्वाजः

(१) जौहर आदि लिखते हैं कि छोटी अवस्था के कारण जान बूझ-कर छोड़ गए थे।

(२) अकबर १५ दिसंबर सन् १५४३ ई० को कंधार पहुँचे।

(३) पहले एक ओर चार कोस तक बराबर गए तब मुड़कर आगे का रास्ता लिया।

निआज़ी, नदीम कोका[1], रोशन कोका, हाजी मुहम्मद खाँ, बाबा दोस्त बख़्शी[2], मिर्ज़ा क़ुली बेग चूली[3], हैदर मुहम्मद आख़्ता: बेगी[4], शेख़ यूसुफ़ चूली, इब्राहीम एशक आग़ा[5], हसन अली एशक आग़ा, याक़ूब क़ोरची[6], अंबर नाज़िर और मुल्कमुख़्तार, संबल मीर हज़ार[7] और ख़्वाज: केसक। ख़्वाज: गाज़ी कहता है[8] कि मैं भी सेवा में था। ये लोग बादशाह के साथ चले और हमीदा बानू बेगम कहती हैं कि तीस मनुष्य[9] साथ थे। स्त्रियों में हसन अली एशक आग़ा की स्त्री भी थी।

---

(१) इसकी स्त्री माहम अनगा और अतगाख़ाँ (शम्शुद्दीन ग़ज़नवी) अपनी स्त्री जीजी अनगा सहित अकबर के साथ थे। जौहर लिखता है कि वह भी अकबर के साथ था, पर भागकर हिरात में बादशाह से जा मिला।

(२) वेतन बाँटनेवाला।

(३) चूल का अर्थ रेगिस्तान है। हुमायूँ ने फारस जानेवालों को चूली पदवी दी थी।

(४) घोड़ों का अध्यक्ष।

(५) द्वाररक्षक।

(६) शस्त्रालय का अध्यक्ष।

(७) अशुद्धि से मीर हाज़िर के स्थान पर मीर हज़ार लिखा जान पड़ता है।

(८) इस बात से मालूम होता है कि बेगम ने पूछकर लिखा है। जौहर कहता है कि ख़्वाज: ग़ाज़ी मक्के से फारस आकर मिला था पर बेगम की लिखावट से उसकी बात कट जाती है।

(९) निज़ामुद्दीन अहमद बाईस मनुष्य लिखता है और जौहर ने लिखा है कि चालीस मनुष्य और दो स्त्रियाँ साथ थीं।

रात्रि की निमाज़ का समय बीत चुका था जब पहाड़ के नीचे पहुँचे। उसपर इतनी बर्फ़ पड़ी थी कि रास्ता नहीं था कि उसपर चढ़ा जाय। इधर यह डर लगा था कि कहीं अन्यायी मिर्ज़ा अस्करी पीछे से न आ पहुँचे। अंत में रास्ता मिलने पर पहाड़ पर चढ़ गए और रात्रि भर बरफ़ में पड़े रहे। उस समय ईंधन भी नहीं था कि आग सुलगावें और भोजन के लिये भी कुछ नहीं था। भूख कष्ट दे रही थी और मनुष्य घबड़ा रहे थे। बादशाह ने कहा कि एक घोड़े को मार डालो। घोड़े को तो मारा पर देग थी ही नहीं कि उसमें पकावें। तब लोहे की टोपी में मांस को उबाला और भूना। चारों ओर आग सुलगाई गई और बादशाह ने मांस स्वयं भूनकर खाया। वे स्वयं कहते थे कि शीत के मारे मेरा सिर ठंढा हो गया था।

किसी प्रकार जब सबेरा हुआ तब उन्होंने दूसरे पहाड़ को दिखलाया कि उस पर मनुष्य बसे हैं, उस स्थान पर बहुत से बिलूची होंगे इससे वहीं चलना चाहिए। वहां चले और दो दिन में पहुँच गए। थोड़े गृह थे जिनमें के कुछ जंगली बिलूची पहाड़ के नीचे बैठे हुए थे जिनकी बोली पिशाचों की सी थी। बादशाह के साथ तीस मनुष्य के लगभग थे जिन्हें देखकर सब बिलूची एकत्र होकर पास आए। बादशाह शामिआने में बैठे थे। उन्हें दूर से बैठे देखकर वे एक दूसरे से कहने लगे कि यदि हम इन लोगों को पकड़कर मिर्ज़ा अस्करी के पास ले जावें तो वे इनका सामान अवश्य हमें देंगे और ऊपर से

पुरस्कार भी मिलेगा। हसन अली एशक आगा की एक स्त्री[1] बिलूची थी जो उस भाषा को जानती थी और जिसने समझा कि इन पिशाचों का बुरा विचार है।

सबेरे कूच का विचार हुआ पर बिलूचियों ने कहा कि हमारा सरदार[2] नहीं है जब वह आवेगा तब कूच करिएगा। समय भी निकल गया था इससे सारी रात चौकसी से रहे। कुछ रात्रि व्यतीत हो गई थी कि उस बिलूची सरदार ने आकर बादशाह से भेंट किया और कहा कि मिर्ज़ा कामराँ और मिर्ज़ा अस्करी का आज्ञापत्र मेरे पास आया है जिसमें लिखा है कि सुनने में आया है कि बादशाह तुम्हारे घरों में हैं और यदि वहाँ हों तब कभी सहस्र बार कभी मत छोड़ना, पकड़कर मेरे पास ले आओ। साथ का सामान और घोड़े तुम्हें मिलेंगे यदि तुम बादशाह को क़ंधार पहुँचाओगे। प्रथम मैंने आपको नहीं देखा था तब ऐसा बुरा विचार था पर अब सेवा करने पर मेरा प्राण और मेरे पाँच छ पुत्र आपके सिर पर क्या उसके एक बाल पर निछावर हैं। जहाँ इच्छा हो जायँ। ईश्वर रक्षा करे और मिर्ज़ा अस्करी मेरा जो चाहें सो करें। अंत में बादशाह ने एक लाल, एक मोती और कई दूसरी वस्तु उसी बिलूची को दी और सबेरे कूच कर दुर्ग बाबा हाजी की ओर चले[3]।

---

(१) एक बिलूची सरदार की पुत्री थी जिसका नाम एशक आग़ः था।

(२) मलिक खत्ती नाम था।

(३) दुर्ग बाबा हाजी तक रक्षार्थ यह साथ साथ पहुँचाने गया था।

दो दिन पर वहाँ पहुँचे। यह दुर्ग गर्मसीर प्रांत में नदी के तट पर बना हुआ है और वहाँ बहुत सय्यद बसते थे। वे बादशाह की सेवा में आए और उनका आतिथ्य किया। सबेरे ख़्वाजा अलाउद्दीन महमूद[1] मिर्ज़ा अस्करी के यहाँ से भागकर आया और उसने खच्चर, घोड़े, शामिआना आदि लाकर बादशाह को भेंट किया। अब वे निश्चिंत हुए।

दूसरे दिन हाजी मुहम्मदखाँ कोकी[2] तीस चालीस सवारों सहित आया और उसने कई खच्चर भेंट किए। अंत में भाइओं की शत्रुता[3] और सर्दारों के भागने से निरुपाय होकर बादशाह ने इसीमें अपनी भलाई देखी कि ईश्वर पर भरोसा करके ख़ुरासान जाने का विचार करें[4]।

कई दिन की यात्रा पर ख़ुरासान के पास पहुँचे। हलमंद नदी पर जब वे पहुँचे तब शाह तहमास्प इस समाचार को सुन-

---

(१) अलाउद्दीन या जलालुद्दीन महमूद मिर्ज़ा अस्करी का तहसीलदार था।

(२) बाबर के मित्र बाबा कुशका का पुत्र था।

(३) कामराँ अफ़ग़ानिस्तान और बदख़्शाँ का मालिक था जिसकी ओर उसका सहोदर भाई मिर्ज़ा अस्करी था और मिर्ज़ा हिंदाल कामराँ की क़ैद में थे। भारत-साम्राज्य शेरशाह के और सिंध शाह हुसेन के अधिकार में था इससे हुमायूँ के लिये केवल फारस का ही रास्ता खुला रह गया था। जाने का समय सन् १५४३ ई० का दिसंबर महीना है।

(४) फ़ारस जाते समय ख़ुरासान होते गए थे। चूपी बहादुर को हुमायूँ ने शाह के पास अपने आने का समाचार देकर भेजा था।

कर बड़े आश्चर्य और विचार में पड़ गए कि हुमायूँ बादशाह विद्रोही, वक्रगतिवाले और अशुभ आकाश के चक्र से इन सीमाओं पर आए और अवश्यंभावी परमेश्वर उन्हें यहाँ ले आए।

बादशाह का स्वागत करने को अमीर, सर्दार, भद्र, पूज्य, अयोग्य, योग्य, बड़े और छोटे सब को भेजा। हलमंद नदी तक ये सब अगवानी करने आए[1]। शाह ने अपने भाई बहराम मिर्ज़ा, अल्क़ास मिर्ज़ा और साम मिर्ज़ा को स्वागत के लिए भेजा जो आकर मिले और बड़ी प्रतिष्ठा के साथ लिवा लेगए। जब पास पहुँचे तब शाह के भाइओं ने शाह को समाचार भेजा। शाह भी सवार होकर स्वागत को आए और एक दूसरे से मिले। इन दो उच्च आसीन बादशाहों की मित्रता एक बादाम के भीतर दो बीजों[2] की ऐसी थी और मित्रता और बंधुत्व सीमा तक पहुँच गई थी कि जितने दिनों तक बादशाह वहाँ रहे बहुधा शाह बादशाह के यहाँ जाते और जिस दिन शाह नहीं आते थे उस दिन बादशाह जाते थे।

बादशाह जब ख़ुरासान में थे तब उन्होंने वहाँ के बाग़

---

(१) कामराँ के आजाने के डर से बिना शाह की आज्ञा लिए या कहलाए ही हुमायूँ हेलमंद नदी पार हो गए थे।

(२) गुलबदन बेगम ने फ़ारस के सुखों का ही वर्णन किया है यद्यपि वहाँ की बहुत सी बातें उसके वंशवालों के लिये मानहानि-कारक और कष्ट-दायक हुई थीं। ऐसी बातों और घटनाओं का जौहर ने अपनी पुस्तक में वर्णन दिया है।

बग़ीचे और सुलतान हुसेन मिर्ज़ा की बनवाई और प्राचीन बड़ी बड़ी इमारतों की सैर की[१]।

जब एराक़ में थे तब आठ बार अहेर को गए थे और प्रत्येक बार बादशाह को भी साथ लिवा गए थे। हमीदा बानू बेगम ऊँट पर या पालकी में बैठकर तमाशा देखती थीं। शाह की बहिन शाहज़ाद: सुलतानम[२] घोड़े पर सवार होकर शाह के पीछे खड़ी रहती थीं। बादशाह कहते थे कि अहेर में शाह के पीछे एक वृद्धा[३] घोड़े पर सवार थी जिसकी बाग श्वेत डाढ़ी-वाले मनुष्य के हाथ में रहती थी। लोग कहते थे कि यह शाह की बहिन शाहज़ाद: सुलतानम है। अर्थात् शाह ने बादशाह पर

---

(१) ख़ुरासान के सिवाय रास्ते में जहाँ जहाँ अच्छी और प्रसिद्ध इमारतें थीं वे सभी देखने गए थे। अपने पिता के समान उन्होंने हिरात की सैर की। जाम जाकर अहमद ज़िंद:फ़ील का मकबरा देखा और सन् १५४४ ई० में आर्दबेल में सफ़ी वंश के प्रथम शाह का मक़बरा देखा। जौहर ने इन सब बातों का भी वर्णन लिखा है।

(२) इन्होंने फारस में हुमायूँ का बहुत पक्ष लिया था और एक बार उनके जीवन के लिये भी प्रार्थना की थी। शाह तहमास्प इनकी बड़ी प्रतिष्ठा करते थे और राजकार्य में भी इनका प्रभाव पड़ता था।

(३) जब हुमायूँ फारस गए थे उस समय शाह तहमास्प की अवस्था उंतीस वर्ष की थी और वह दस वर्ष की अवस्था में सन् १५२३ ई० में गद्दी पर बैठा था। उसकी बहिन का चाहे वह बड़ी ही रही हो वृद्धा होना भ्रमोत्पादक है। पर यह भ्रम या अशुद्धि आगे जाकर साफ हो जाती है।

बहुत कृपा और प्रतिष्ठा दिखलाई और माता और बहिन की तरह[1] दया और मित्रता करने का कष्ट उठाया।

एक दिन शाहज़ादः सुलतानम ने हमीदा बानू बेगम का आतिथ्य किया। शाह ने अपनी बहिन से कहा कि जब आतिथ्य करना तब नगर के बाहर तैयारी करना। नगर से दो कोस पर एक अच्छे मैदान में ख़ेमा, तंबू, बारगाह, छत्र, मेहराब आदि खड़े किए गए। ख़ुरासान और उसके आसपास सरापर्दा लगता है परंतु पीछे की ओर नहीं रहता। बादशाह हिंदुओं की चाल पर चारों ओर क़नात खिँचवाते थे। शाह के मनुष्यों ने ख़ेमे आदि खड़े करके उसके चारों ओर रंगीन डंडे लगा दिए थे। शाह की आपसवाली, बूआ, बहिनें, हरमवालियां और ख़ाँ तथा सर्दारों की स्त्रियाँ सब एक सहस्र के लगभग सजी सजाई वहाँ थीं।

उस दिन हमीदा बानू बेगम से शाहज़ादा सुलतानम ने पूछा कि हिंदुस्तान में भी ऐसे छत्र और मेहराब होते हैं। बेगम ने उत्तर दिया कि ख़ुरासान को दो दाँग[2] और हिंदुस्तान को चार दाँग कहते हैं तब जो दो दाँग में मिलेगी वह चार दाँग में अवश्य अच्छी ही मिलेगी।

---

(१) माता और बहिन की तरह का व्यवहार जो शाहज़ादा सुलतानम ने हमीदा बानू बेगम के साथ किया था।

(२) दाँग का अर्थ छ रत्ती की तौल या तीन है। इस मसले का अर्थ केवल इतना ही है कि ख़ुरासान से हिंदुस्तान हर बात में दूना है। हमीदा बानू बेगम का इस मसल का प्रयोग करना नीतियुक्त था।

शाह की बहिन शाहसुलतानम[1] ने अपनी बूआ के उत्तर में हमीदा बानू बेगम की बात का समर्थन करते हुए कहा कि बूआ आश्चर्य है कि आप यह बात कहती हैं क्योंकि दो दाँग कहाँ और चार दाँग कहाँ! प्रकट है कि (हिंदुस्तान में छत्र और मेहराब) उत्तम और अच्छे मिलते हैं।

दिन भर मजलिस होती रही। भोजन के समय सर्दारों की स्त्रियों ने खड़े होकर सेवा की और शाह की हरमवालियों ने शाहज़ाद: सुलतानम के आगे भोजन परोसा, तथा हर प्रकार के वस्त्र कारचोबी आदि से हमीदा बानू बेगम का सत्कार किया। शाह स्वयं आगे से जाकर रात्रि के निमाज़ तक बादशाह के यहाँ रहे[2]। इसके अनंतर जब सुना कि हमीदा बानू बेगम गृह पर आगईं तब उठकर अपने महल को चले गए। यहाँ तक कृपा और सुव्यवहार किया।

उस समय रौशन कोका ने पुरानी स्वामिभक्ति और सेवा के होते भी उस पराए और कंटकमय देश में कपट करके कई बहुमूल्य लाल चुरा लिए जो बादशाह की थैलियों में रहते थे।

---

(१) यहाँ शाह की बहिन शाहसुलतानम प्रश्नकर्ता शाहज़ाद: सुलतानम को बूआ अर्थात् पिता की बहिन कहती हैं जिससे वह शाह तहमास्प की भी बूआ हुईं। इस संबंध से वह अवश्य वृद्धा रही होंगी। जैसे हुमायूँ अपनी बूआ ख़ानज़ाद: बेगम की प्रतिष्ठा करते थे वैसे ही शाह तहमास्प भी इनकी करते थे।

(२) जिसमें बादशाह अकेले न रह जायँ।

उन्हें स्वयं बादशाह या हमीदा बानू बेगम जानती थीं और किसीको पता नहीं रहता था। यदि बादशाह कहीं जाते थे तो उस थैली को हमीदा बानू बेगम को सौंप जाते थे। एक दिन बेगम सिर धोने गईं तब उस थैली को रूमाल में लपेटकर बादशाही पलंग के सिरहाने रख गईं। रौशन कोका ने इस समय को ही ठीक समझकर पाँच लाल चुरा लिए और ख़्वाजा ग़ाज़ी से मिलकर उसको सौंप दिए (और कह दिया) कि समय पर (हम लोग) उन्हें बेंच डालेंगे।

हमीदा बानू बेगम सिर धोकर जब आईं तब बादशाह ने उस थैली को उन्हें दे दिया। बेगम ने हाथ में लेते ही जान लिया कि यह थैली हल्की है और बादशाह से भी यह कह दिया। बादशाह ने कहा कि इस का क्या अर्थ है? हमारे और तुम्हारे सिवाय कोई नहीं जानता। तब यह क्या हुआ और कौन लेगया? बादशाह बड़े चकित हुए। बेगम ने अपने भाई ख़्वाजा मुअज़्ज़म से कहा कि ऐसी घटना हो गई है। यदि ऐसे समय भाईपन निबाहो और इस प्रकार जाँच करो कि कोई न जाने तब मुझे लज्जा से बचा लोगे, नहीं तो जब तक जीवित रहूँगी तब तक बादशाह के आगे लज्जित बनी रहूँगी।

ख़्वाजा मुअज़्ज़म ने कहा कि एक बात मेरे मन में आती है कि बादशाह से इतना घनिष्ट संबंध रहते हुए भी मुझ में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि एक दुर्बल टट्टू ख़रीद सकूँ, पर

इसके प्रतिकूल ख़्वाजा ग़ाज़ी और रौशन कोका[1] ने अपने अपने लिये एक एक अच्छा घोड़ा खरीद लिया है पर अभी तक मूल्य नहीं दिया है। इनकी यह खरीद आशा-विहीन नहीं है। बेगम ने कहा कि ए भाई, यह समय भाईपन का है, अवश्य इस बात की जाँच करनी चाहिए। ख़्वाजा मुअज़्ज़म ने कहा कि माहर्चीचम, तुम किसीसे यह बात मत कहना, ईश्वरी कृपा से आशा करता हूँ कि सत्य सत्य ही हो रहेगा।

वहाँ से निकलकर वह उन व्यापारियों के घर पर गया और उसने उनसे पूछा कि इन घोड़ों को कितने पर बेंचा है? घोड़ों के मूल्य के बारे में क्या देने की प्रतिज्ञा की है और उसे देने के लिये क्या गिरवी छोड़ गए हैं? व्यापारियों ने कहा कि हमसे दोनों मनुष्य लालों को देने की प्रतिज्ञा करके घोड़े ले गए हैं।

ख़्वाजा मुअज़्ज़म यहाँ से ख़्वाजा ग़ाज़ी के सेवक के पास आया और उससे कहा कि ख़्वाज़ा ग़ाज़ी के वस्त्र आदि की गठरी कहाँ है और किस स्थान पर रखी जाती है? ख़्वाजा ग़ाज़ी के नौकर ने उत्तर दिया कि हमारे ख़्वाजा के पास गठरी आदि नहीं है केवल एक लंबी टोपी है जिसे सोते समय वह कभी सिर के नीचे और कभी बग़ल में रखते हैं। ख़्वाज़ा मुअज़्ज़म

---

(१) जौहर लिखता है कि असंतुष्ट आदमियों में ये दोनों और सुल्तान मुहम्मद नेज़:बाज़ थे जो अभी मक्के से लौटे थे और कामराँ की ओर के थे। गुलबदन बेगम के लेख से जौहर की उक्त बातें केवल सुल्तान मुहम्मद पर ही घटित मालूम होती हैं।

समझ गया और उसने मन में निश्चित कर लिया कि वे लाल ख़्वाजा ग़ाज़ी के पास हैं और उसी ऊँची टोपी में रखे हुए हैं।

ख़्वाजा मुअज़्ज़म ने बादशाह के पास जाकर प्रार्थना की कि मैंने उन लालों का पता ख़्वाजा ग़ाज़ी की ऊँची टोपी में पाया है और चाहता हूँ कि एक चाल से उससे लेलूँ। यदि ख़्वाजा ग़ाज़ी बादशाह के पास आकर मेरी चुग़ली खावे तो आप मुझे कुछ न कहें। बादशाह ने यह सुनकर मुस्किरा दिया। तब से ख़्वाजः मुअज़्ज़म ख़्वाजा ग़ाज़ी से हँसी, ठठोली और खिलवाड़ करने लगा। ख़्वाजा ग़ाज़ी ने आकर बादशाह से प्रार्थना की कि मैं बेचारा मनुष्य नाम धाम रखता हूँ पर यह अल्पवयस्क ख़्वाजा मुअज़्ज़म किसलिये मेरी हँसी ठठोली इस पराए देश में करता है और मेरी मानहानि करता है। बादशाह ने कहा कि किसी अर्थ से नहीं करता, केवल अल्पवयस्क है इससे उसके मन में आ गया है कि हँसी खिलवाड़ करता है। उसकी कम अवस्था के कारण तुम किसी बात का विचार मत करो।

दूसरे दिन ख़्वाजा ग़ाज़ी आकर दीवानख़ाने में बैठा था कि ख़्वाजा मुअज़्ज़म ने अनजान बनकर उसकी टोपी को सिर पर से झट उतार लिया और उसमें से उन अपूर्व लालों को निकालकर बादशाह और हमीदा बानू बेगम के आगे लाकर रख दिया। बादशाह मुस्किराए और हमीदा बानू बेगम ने प्रसन्न होकर ख़्वाजा मुअज़्ज़म को शाबाशी और धन्यवाद दिया।

ख़्वाजा ग़ाज़ी और रौशन कोका दोनों अपने कर्मों से लज्जित होकर शाह के पास गए और शाह से यहाँ तक गुप्त बातें[1] कहीं कि अंत में उनका मन फिर गया। बादशाह ने जान लिया कि शाह की पुरानी मित्रता और विश्वास अब नहीं रह गया, तब जितना लाल और रत्न[2] पास था उन्होंने शाह के यहाँ भेज दिया। शाह ने बादशाह से कहा कि ख़्वाजा ग़ाज़ी और रौशन कोका का दोष है कि हमको आप से पराया कर

---

(१) जौहर ने लालों की बातें नहीं लिखी हैं, वह केवल यह लिखता है कि ये दोनों और सुल्तान मुहम्मद, शाह के पास गए और बोले कि हुमायूँ में कुछ योग्यता नहीं है जिस कारण भाइयों ने उसका साथ नहीं दिया। साथही यह भी प्रस्ताव किया कि यदि सेना मिले तो शाह के लिये वे कंधार विजय कर दें।

(२) अंग्रेजी अनुवादिका ने लिखा है कि सुल्तान इब्राहीम के कोष से मिले हुए कोहेनूर हीरे को ही बादशाह ने इस समय शाह को भेंट दिया था। (एशाटिक कार्टर्ली रिव्यू, एप्रिल १८९९ का लेख 'बाबर का हीरा,' एच० बेवरिज लिखित) जौहर लिखता है कि बादशाह ने सबसे बड़ा हीरा चुनकर एक सीप की डिब्बी में रखा और एक रिकाबी में इस डिब्बी के चारों ओर बचे हीरों और लालों को सजाकर बैरामखाँ के हाथ भेजा था। स्टुअर्ट लिखता है कि यह बड़ा हीरा राजा विक्रमाजीत ग्वालिअरवाले का रहा होगा जिसे उसके वंशवालों ने हुमायूँ को दिया था और इसका जिक्र इस पुस्तक में पहले आ चुका है। यही हीरा हो सकता है क्योंकि कोहेनूर को सन् १६६४ ई० में औरंगजेब ने टेवर्निअर को दिखलाया था और सन १७३९ ई० में नादिर शाह के समय में वह फारस गया था और उसीने इसका यह नाम रखा था।

दिया, नहीं तो हम आप एक ही थे। फिर दोनों बादशाह एक मत हो गए और एक का दूसरे की ओर से हृदय स्वच्छ होगया।

वे दोनों प्रत्येक बादशाह की ओर से दुष्ट विश्वासघाती हो गए और बादशाह ने उन दोनों को शाह को सौंप दिया। शाह ने उन लालों[1] को भी जब समय मिला ले लिया और उन लोगों के लिए आज्ञा दी कि कारागार[2] में रक्षा से रखो।

बादशाह जब तक एराक़ में रहे तब तक अच्छे प्रकार रहे और शाह ने उनका बहुत सत्कार किया। वह प्रत्येक दिन अपूर्व और अमूल्य वस्तु भेंट में बादशाह को भेजता था।

अंत में शाह ने अपने पुत्र[3] को ख़ानों, सुलतानों और सर्दारों के साथ सहायता के लिए ईरान से इच्छानुसार ख़ेमे, तंबू, छत्र, मेहराब, शामिआने आदि काम किए हुए तथा रेशमी गलीचे, कलाबत्तू की दरियाँ, हर प्रकार का सामान जैसा चाहिए, तोशकख़ाना, कोष, हर प्रकार के कारख़ाने, बावरची-ख़ाना और रिकाब-ख़ाना बादशाह के योग्य तैयार कराकर (दिए और) शुभ साइत में दोनों बड़े बादशाह एक दूसरे से बिदा हुए। वहाँ से बादशाह कंधार को चले[4]।

(१) जो व्यापारियों को दिए जा चुके थे।

(२) सुलेमान के दीवान के नीचे जमीन में बने हुए प्रसिद्ध कारागार में उतार दिए गए थे।

(३) शाह मुराद जो दूध पीता बच्चा था और मुख्य सेनापति बिदाग़ख़ाँ था। सेना दस सहस्र थी (तबक़ाते-अकबरी)।

(४) हुमायूँ फिर रास्ते में ऐश, आराम और सैर करने में लग गया

उस समय बादशाह उन दोनों स्वामिद्रोहियों के दोष को शाह से क्षमा माँग करके और स्वयं क्षमा करके साथ कंधार लिवा गए।

जब मिर्ज़ा अस्करी ने सुना (१५४५ ई०) कि बादशाह ख़ुरासान से लौटकर कंधार को आ रहे हैं तब जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर बादशाह को मिर्ज़ा कामराँ के यहाँ काबुल भेज दिया जिसने हमारी बूआ ख़ानज़ाद: बेगम को उन्हें सौंपा। जब आक:जानम ने उन्हें अपनी रक्षा में लिया था, उस समय जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर बादशाह ढाई वर्ष[1] के थे। वह उन पर बड़ा प्रेम रखतीं, उनके हाथ पाँव को चूमतीं और कहती थीं कि ठीक मेरे भाई बादशाह बाबर के ऐसे हाथ पाँव हैं और बिलकुल वैसाही रूप भी है।

बादशाह के कंधार आने का निश्चय हो जाने पर मिर्ज़ा कामराँ ने ख़ानज़ाद: बेगम से बड़ी नम्रता आदि दिखलाकर और कुछ रो पीट कर कहा कि आप बादशाह के पास कंधार जावें[2] और हम लोगों में संधि करा दें। बादशाह के आने पर

और उसने इतना समय व्यतीत किया कि शाह ने क़ज़वीन में एकाएक पहुँच कर, जहाँ हुमायूँ ठहरे हुए थे, इन्हें क्रोध से झट बिदा कर दिया।

(१) यह तीन वर्ष के हो चुके थे और बरफ ही में अपनी बहन बख़्शीबानू सहित काबुल गए।

(२) ख़ानज़ाद: बेगम के काबुल से रवान: होने के पहले ही बैराम ख़ाँ वहाँ पहुँच गए थे और लौटते समय बेगम के साथ ही आए थे। वहाँ इन्होंने अकबर को देखा और हिंदाल, सुलेमान, हरम बेगम, इब्राहीम और यादगार नासिर सब को रक्षा में पाया।

ख़ानज़ाद: बेगम ने अकबर बादशाह को मिर्ज़ा कामराँ को सौंप दिया और वे स्वयं फुर्ती से कंधार को चल दीं। कामराँ ने अकबर बादशाह को अपनी स्त्री ख़ानम को[1] सौंपा।

जब बादशाह कंधार पहुँचे तब चालिस दिन तक मिर्ज़ा कामराँ (के अध्यक्ष) मिर्ज़ा अस्करी को कंधार में घेरे रहे और बैरामख़ाँ को राजदूत बना कर मिर्ज़ा कामराँ के पास भेजा। मिर्ज़ा अस्करी दुखित और पराजित होकर क्षमा-प्रार्थी हुआ और उसने बाहर आकर बादशाह की सेवा की[2]। बादशाह ने कंधार पर अधिकार करके उसे शाह के पुत्र को दे दिया। कुछ दिन के अनंतर शाह का पुत्र बीमार होकर मर गया। बैरामख़ाँ के लौटने[3] पर बादशाह ने कंधार उसे सौंपा।

हमीदा बानू बेगम को भी कंधार में छोड़कर बादशाह मिर्ज़ा कामराँ के पीछे चले।

---

(१) मुहतरिमा ख़ानम शाह मुहम्मद सुलतान काशग़री चग़त्ताई और ख़दीजा सुलतान चग़त्ताई की पुत्री थी। पहला विवाह कामराँ के साथ और दूसरा मिर्ज़ा सुलेमान और हरम बेगम के पुत्र इब्राहीम मिर्ज़ा के साथ हुआ था। बहुधा इसका नाम केवल ख़ानम लिखा गया है।

(२) ४ दिसंबर सन् १५४५ ई० को कंधार विजय हुआ।

(३) बैरामख़ाँ कंधार विजय के पहले ही लौटकर आ गया था। शाह मुराद की मृत्यु पर उस दुर्ग को फिर से फारसवालों से छीनकर बैरामख़ाँ को सौंपा गया था।

ख़ानज़ाद: बेगम जो साथ में थीं क़बलचाक[1] नामक स्थान में पहुँचकर तीन दिन ज्वर से पीड़ित रहीं। हकीमों ने बहुत दवा की पर लाभ नहीं हुआ। चौथे दिन सन् ९५१ हि० में मर गईं। क़बलचाक में ही गाड़ी गईं पर तीन महीने के अनंतर सम्राट् पिता के मक़बरे[2] में लाई जाकर रखी गईं।

मिर्ज़ा कामराँ जितने वर्षों तक काबुल में रहे कभी चढ़ाई नहीं[3] की थी कि एकाएक बादशाह का आना सुनकर उन्हें अहेर खेलने की इच्छा पैदा होगई और वह हज़ारा[4] की ओर चल दिए।

इसी समय मिर्ज़ा हिंदाल ने जिन्होंने एकांतवास ले लिया था बादशाह का एराक़ और ख़ुरासान से लौटना और कंधार विजय करना सुना और इस अवसर को अच्छा समझकर मिर्ज़ा यादगार नासिर को बुलवाकर कहा कि बादशाह ने आकर कंधार विजय किया है और मिर्ज़ा कामराँ ने ख़ानज़ाद: बेगम को संधि के लिये भेजा था परंतु बादशाह ने उस

(१) इस स्थान के लिये अकबरनामा, जि० १ पृ० ४७७ का नोट देखिए। हलमंद और अर्गनदाब नदियों के बीच पहाड़ी देश में जो टीरी प्रांत कहलाता है उसी में एक स्थान का यह नाम है।

(२) ख़ानज़ाद: बेगम, उसका पति महदी ख़्वाज: और अबुलमआली तर्मिज़ी भी सब उसी स्थान में गड़े हैं।

(३) बदख़्शाँ और हज़ारा जाति पर चढ़ाई की थी। यहाँ अहेर खेलने ही से अर्थ है। तास्त शब्द का कई अर्थों में प्रयोग किया गया है।

(४) कामराँ की एक स्त्री हज़ारा जाति की थी।

संधि को नहीं माना। बादशाह ने बैरामखाँ को राजदूत बनाकर भेजा था परंतु मिर्ज़ा कामराँ ने उनकी बात नहीं मानी। अब बादशाह कंधार बैरामखाँ को सौंपकर काबुल आ रहे हैं। उचित है कि हम तुम आपस में प्रतिज्ञा करके किसी बहाने बादशाह के पास पहुँचे। मिर्ज़ा यादगार नासिर ने मान लिया और आपस में दोनों ने प्रतिज्ञा भी कर ली। मिर्ज़ा हिंदाल ने कहा कि तुम स्वयं भागना निश्चित करो और मिर्ज़ा कामराँ जब सुनेगा तब मुझसे कहेगा कि यादगार नासिर भाग गया है जाकर समझाकर लिवा लाओ। मेरे पहुँचने तक तुम धीरे धीरे जाना और जब हम आजावेंगे तब साथही फुर्त्ती से चलकर अपने को बादशाह की सेवा में पहुँचावेंगे।

यह सम्मति ठीक होने पर मिर्ज़ा यादगार भागे और यह समाचार मिर्ज़ा कामराँ को मिला। वह उसी समय लौटकर काबुल आए और मिर्ज़ा हिंदाल को बुलाकर कहा कि तुम जाओ और मिर्ज़ा यादगार नासिर को समझाकर लिवा लाओ। वह उसी समय सवार हो फुर्त्ती से चलकर साथ होगए। वहाँ से चलकर पाँच छ दिन में बादशाह की सेवा में पहुँचकर सम्मानित हुए और प्रार्थना की कि तकिया हिमार के रास्ते से चलना चाहिए।

९ रमज़ान सन ९५१ हि०[1] (अक्तूबर सन १५४५ ई०)

(1) ९५१ हि० अशुद्ध है। अबुलफ़ज़ल ने ९५२ हि० लिखा है।

को बादशाह तकिया हिमार[1] पर जा उतरे। उसी दिन मिर्ज़ा कामराँ को समाचार मिला और वह बहुत घबड़ा गया। उसी समय ख़ेमे निकलवा गुज़रगाह[2] के आगे जा पहुँचा। रमज़ान को बादशाह घाटी तीपः में जा पहुँचे और मिर्ज़ा कामराँ[3] भी युद्ध की इच्छा से सामने आ उतरे।

इसी समय सब सर्दार और सैनिकगण मिर्ज़ा कामराँ के यहाँ से भागकर बादशाह की सेवा में चले आए। मिर्ज़ा कामराँ का एक प्रसिद्ध सर्दार बापूस[4] था जो अपने सैनिकों के सहित भागकर बादशाह का पद चूमकर सम्मानित हुआ। मिर्ज़ा कामराँ जब अकेला रह गया और उसने देखा कि मेरे आस-पास कोई नहीं रह गया तब बापूस के गृह के जो पास ही था द्वार और दीवाल को गिरवाकर तथा नष्ट करके धीरे धीरे बाग़ नौरोज़ और गुलरुख़ बेगम[5] के मक़बरे के आगे से

(१) 'गदहे का दर्रा' अर्थ है।

(२) काबुल नगर के पास दक्षिण और पश्चिम की ओर काबुल नदी के किनारे पर यह बाग़ है और इसके पास ही बाबर का मक़बरा है।

(३) इसकी सेना क़ासिम बर्लास के अधीन थी। शायद वह स्वयं वहाँ नहीं था। इस सेना पर ख़्वाजा मुअ‍ज़्ज़म, हाजी मुहम्मद ख़ाँ और शेर अफ़गन ने आक्रमण कर उसे भगा दिया। अबुलफ़ज़ल जलगेदरी में इस युद्ध का होना लिखता है।

(४) मिर्ज़ा कामराँ की पुत्री हबीबः बेगम का यासीन दौलात् (आक़ सुलतान) से विवाह ठीक हुआ था। इसका यह अतालीक़ अर्थात् शिक्षक नियत हुआ था।

(५) कामराँ की माता।

होता हुआ और अपने बारह सहस्र सवारों को नौकरी से अलग कर चल दिया[1]।

जब अँधेरा हो गया तब वह उसी रास्ते से बाबा दश्ती[2] पहुँच तालाब के आगे ठहर गया और दोस्ती कोका और जोकी ख़ाँ को उसने भेजा कि उसकी बड़ी पुत्री हबीबः बेगम[3], उसके पुत्र इब्राहीम सुलतान मिर्ज़ा, ख़िज्रख़ाँ की भतीजी हज़ारःबेगम[4],

---

(१) कामराँ ने अकेले होने पर ख़्वाजा ख़ाविंद महमूद और ख़्वाजा अब्दुलख़ालिक को क्षमा माँगने भेजा। हुमायूँ ने यह मान लिया परंतु कामराँ रात होते ही काबुल गया और वहाँ से अपने पुत्र आदि को साथ लेकर बेनी हिसार होता हुआ ग़ज़नी चला गया।

(२) दश्ती का अर्थ जंगली है और यह स्थान किसी फ़क़ीर का मक़बरा होगा।

(३) हबीबः बेगम—कामराँ का सन् १५२८ ई० में सुलतान अली मिर्ज़ा बेगचिक मामा की पुत्री से विवाह हुआ था जिससे स्यात् उसकी यह सबसे बड़ी पुत्री थी। इसका सन् १५४५ ई० में गुलबदन बेगम के पति ख़िज़्र ख़्वाजः ख़ाँ के भाई और गुलबदन बेगम के ममेरे भाई यासीन दौलात् (आक़ सुलतान) के साथ विवाह हुआ था। सन् १५५१-५२ ई० में जब वह यासीन दौलात् से बलात् अलग की गई तब दूसरा विवाह हुआ होगा।

(४) हज़ारः बेगम—जिस समय हुमायूँ और कामराँ के बीच में युद्ध चल रहा था उस समय ख़िज़्र ख़ाँ हज़ारा का एक भाई हज़ारा जाति का सर्दार था जिसकी यह पुत्री थी और कामराँ को ब्याही गई थी।

हरम बेगम[१] की बहिन माह बेगम[२], हाजी बेगम[३] की माता मेह अफ़्रोज़[४] और बाक़ी कोका[५] को साथ ले आवें। अंत में ये लोग मिर्ज़ा कामराँ के साथ हुए और वह ठट्टा तथा बक्खर की ओर चला।

खिज़्रख़ाँ के देश में जो रास्ते में पड़ता है पहुँचकर उसने हबीब: बेगम का विवाह आक़ सुलतान से करके उसे सौंप दिया और वह स्वयं भक्कर और ठट्टा को चला।

---

(१) हरम बेगम—यह सुलतान वैस कोलाबी क़िबचाक़ मुग़ल की पुत्री तथा शुक्रअली बेग, हैदर बेग और माह बेगम की बहिन थी। ख़ान मिर्ज़ा (वैस) के पुत्र मिर्ज़ा सुलेमान से इसका विवाह हुआ था। इसे एक पुत्र मिर्ज़ा इब्राहीम (अबुल क़ासिम) और कई पुत्रियाँ हुईं। इसकी संतान अपने पूर्वज शाह बेगम बद्ख़्शी के द्वारा अपना वंश सिकंदरे-आज़म से बतलाते हैं। इसका कुछ वृत्तांत ग्रंथ और भूमिका में भी आया है। अकबर के समय में काबुल पर इन्होंने अपने पति के साथ बदख़्शाँ से कई बार चढ़ाई की थी। बदायूनी इन्हें वलीनेअमत के नाम से लिखता है जो शाही वंश की बड़ी बूढ़ियों के लिए बहुधा लिखा जाता था। यह प्रबंध आदि में योग्य और साहसी थीं।

(२) माह बेगम—हरम बेगम की बहिन और कामराँ की स्त्री थी।

(३) हाजी बेगम—कामराँ की पुत्री जो गुलबदन के साथ हज्ज को गई पर इसके पहले भी यह स्यात् हज्ज को गई थी क्योंकि इसका इसी समय हाजी बेगम नाम दिया है।

(४) कामराँ की स्त्री थी।

(५) माहम अनगा का पुत्र और अदहमख़ाँ का बड़ा भाई था। माहम इस समय काबुल में रही होगी।

विजयी बादशाह १२वीं की रात्रि जब पाँच घड़ी बीत चुकी थी तब बाला हिसार में ऐश्वर्य, शुभ साइत[1] और सौभाग्य के साथ उतरे। मिर्ज़ा कामराँ के मनुष्य जो बादशाही सेवा में आचुके थे साथही डंका पीटते हुए काबुल[2] में पहुँचे।

उसी महीने की १२वीं को मेरी माता दिल्दार बेगम, गुलचेहरः बेगम और मैंने बादशाह की सेवा की। पाँच वर्ष का समय व्यतीत होचुका था कि मैं सेवा से दूर रही और जब इस जुदाई से छुट्टी मिली तब उन पूज्य के मिलने से सम्मानित हुई। देखते ही दुखित हृदय को शांति और आँखों की लाली को नई रोशनी मिली। मैं प्रसन्नता के कारण हर समय ईश्वर को धन्यवाद देती थी।

अब बहुधा मजलिसें होती रहतीं जो संध्या से सबेरे तक रहतीं और गाने बजाने वाले बराबर गाते बजाते रहते थे। बहुधा खेल भी हुआ करता था जिनमें एक यह है कि बारह मनुष्य बैठते थे और हर एक के पास बीस बीस ताश[3] और

---

(१) ज्योतिषियों से साइत दिखलाकर ही गए थे क्योंकि वे स्वयं ज्योतिषी थे। अबुलफ़ज़ल भी गुलबदन बेगम की तरह १२ तारीख लिखता है पर दूसरे इतिहासकारों ने १०वीं तारीख लिखी है।

(२) १८ नवंबर सन् १५४५ ई० को बुधवार की रात्रि में।

(३) मिस्टर अर्सकिन का कथन है कि पूर्व के ग्रंथों में सबसे पहले ताश का जिक्र उस समय आया है जब बाबर ने सन १५२६-२७ ई० में मीर अली के हाथ कुछ ताश शाह हुसेन अर्गून को भेजे थे

शाहरुखी[1] रहती थीं। जो हारता था वह बीस शाहरुखी भी हार जाता था जो पाँच मिसक़ाल के बराबर होती हैं और जो जीतता था उसे जितना खेलता उतना ही अधिक मिलता।

चौसा, कन्नौज और बक्खर के युद्धों में या जो बादशाह के साथ उस गड़बड़ में मारे गए थे उनकी बेवाओं, मातृपितृ-हीन संतानों और संबंधियों को वेतन भूमि आदि दिए गए। बादशाह के राजत्व काल में सैनिकों और प्रजा में बड़ा संतोष और शांति रही। वे सर्वदा सुख से दिन व्यतीत करते थे और बादशाह की आयु-वृद्धि के लिये बहुधा ईश्वर से प्रार्थना किया करते थे।

कुछ दिन के अनंतर हमीदा बानू बेगम को बुलाने के लिये आदमी कंधार[2] भेजा गया। हमीदा बानू बेगम के आने पर जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर बादशाह की सुन्नत की गई और मजलिस का सामान तैयार हुआ। नौरोज़[3] के अनंतर सत्रह दिन तक

जो इस खेल का शौकीन था। मुग़ल हरम में अवश्यही यह खेल जारी रहा होगा। यहाँ गुलबदन बेगम ताश के किसी नए खेल का वर्णन कर रही हैं।

(१) शाहरुखी का मूल्य दस आना है और चार शाहरुखी का तौल एक मिस्काल होता है।

(२) अबुलफ़ज़्ल लिखता है कि क़राचः खाँ और मुसाहिब बेग को लाने के लिये भेजा था।

(३) फारस का शाका। तबक़ाते-अकबरी में लिखा है कि १० रमज़ान ९५६ हि० को विजय हुई जब अकबर चार वर्ष दो महीने और

खुशी मची, हरे वस्त्र[1] पहिने गए और तीस चालीस लड़कियों को आज्ञा हुई कि हरे वस्त्र पहिनकर पहाड़ों पर निकलें। बादशाह नौरोज़ के प्रथम दिन सतभइओं के पर्वत पर आए और उन्होंने वहाँ कई दिन सुख और चैन से व्यतीत किए। जब मुहम्मद अकबर बादशाह पाँच वर्ष के हुए थे तब काबुल नगर में सुन्नत का जलसा किया गया था। और उसी[2] बड़े दीवानखाने में यह हुआ था। सब बाज़ार सजाया गया था। मिर्ज़ा हिंदाल, मिर्ज़ा यादगार नासिर, सुलतानों और सर्दारों ने अपने अपने घरों को अच्छी तरह सजवाया था और बेगा बेगम के बाग़ में बेगमों और स्त्रियों ने अपूर्व स्थान तैयार कराए थे।

मिर्ज़ाओं और सर्दारों ने दीवानखाने के उसी बाग़ में भेंट[3] दी। बड़ी मजलिस जमी और प्रसन्नता मनाई गई।

पाँच दिन के थे। कुछ इस घटना को ९५२ हि० म लिखते हैं पर ईश्वर ही ठीक जानता है। (इलिअट डाउसन, जि०५, पृ०२२-२३) घटना के चालीस वर्ष बाद ही लिखने में इतनी विभिन्नता हो गई थी। अबुलफ़ज़ल १२ रमज़ान ९५२ हि० को इस घटना का होना लिखता है (जिल्द १, पृ० २९२) जब अकबर ३ वर्ष २ महीना ८ दिन के थे (जन्म १५ अक्तूबर सन् १५४२ ई०)। अकबर के समय में ही लिखे गए इतिहासों में उसीके जीवन की घटनाओं के समय में इतना मत-भेद होना आश्चर्य की बात है।

(१) वर्षाऋतु के कारण ही यह वस्त्र पसंद किया गया था।

(२) जिसमें पानीपत के युद्ध के अनंतर बेगमों ने खुशी मनाई थी।

(३) विवाह के पहले वर के यहाँ दुलहिन के लिये भेजे हुए वस्त्र आदि को साचक कहते हैं जिसे यहाँ बरी या हरपुरी कहते हैं। यहाँ यह शब्द भेंट के अर्थ में आया है।

बादशाह ने मनुष्यों को अच्छे खिलअत और शिरोपाव देने की कृपा की। प्रजा, विद्वान, महात्मा, साधु, दरिद्र, भद्र, शीलवान, छोटे और बड़े सबने सुख चैन से दिन और रात आराम में बिताए।

इसके अनंतर बादशाह दुर्ग ज़फ़र को चले[1] जिसमें मिर्ज़ा सुलेमान था। वह युद्ध के लिये बाहर निकला पर सामना होने पर साहस नहीं कर सका[2], तब उसने भागना निश्चय किया। दुर्ग में बादशाह बिना रुकावट के आराम से चले गए। स्वयं बादशाह किशम[3] में ठहरे हुए थे।

उन्हीं दिनों बादशाह भी कुछ माँदे[4] होगए और उस

(१) मिर्ज़ा सुलेमान को बादशाह ने फ़र्मान भेजा था कि कामराँ ने हमारे कारण तुम्हें कष्ट दिया है अब हम बादशाह हुए, आकर भेंट कर जाओ। परंतु वह नहीं आया और उसने कहलाया कि कामराँ ने हमसे शपथ ली है कि बिना युद्ध के अधीनता मत स्वीकार करना।

(२) अबुलफ़ज़ल लिखता है कि अंदराब के एक गाँव तीरगिराँ में कुछ युद्ध होने के अनंतर वह भागा था (अकबरनामा जि० १, पृ० ३००)

(३) सुलेमान के पराजय पर बादशाह किशम गए जहाँ माँदे होगए और तीन महीने तक ठहरे रहे।

(४) बहुत दिन माँदे रहे पर चार दिन तक बेहोशी रही। माह चूचक बेगम और फ़ातिमा बीबी उर्दूबेगी ने बड़ी सेवा की। इसकी पुत्री ख़्वाजा मुअज़्ज़म की स्त्री ज़ुहरा थी, जिसकी रक्षा करने में अकबर अपना प्राण गँवा चुके थे। बादशाह किशम और ज़फ़र के बीच शाहदान में माँदे हुए थे। वज़ीर क़राचाख़ाँ ने इस समय बड़ी बुद्धिमत्ता से काम किया जिससे हुमायूँ का प्रभाव कम नहीं होने पाया।

दिन सुबह बेहोशी आगई। जब अपने होश में आए तब मुनइम-खाँ के भाई फ़ज़ायल बेग को काबुल भेजा कि जाओ और काबुल-वालों को समझा बुझाकर संतोष दो[1] कि न घबड़ाएँ और कहो कि आपत्ति आगई थी पर अच्छे प्रकार बीत गई।

फ़ज़ायल बेग के काबुल जाने के अनंतर वे एक दिन काबुल की ओर बढ़े थे[2]।

काबुल से झूठा समाचार बक्खर में मिर्ज़ा कामराँ के पास पहुँचा जो उसी समय वहाँ से झट चलकर काबुल की ओर बढ़ा[3]। उसी समय उसने आकर ज़ाहिद बेग[4] को मार डाला और आप काबुल को चला गया।

सबेरे का समय था, काबुल-वालों ने अनजान में पहले की चाल पर फाटकों को खोल दिया था और भिश्ती घसियारे आदि आ जा रहे थे। इनके साथ वे दुर्ग में घुस आए। मुह-

(१) हुमायूँ को अच्छा होने में दो महीने लग गए थे इससे अपनी आरोग्यता का संदेशा और मिर्ज़ा कामराँ से उनकी रक्षा का वृत्तांत जान-कर समझाने के लिये उन्होंने मुनइमखाँ को भेजा था।

(२) फिर दुर्ग ज़फ़र को लौट गए थे। फ़ज़ायल बेग काबुल में बीमारी का समाचार पहुँचने के कुछ घंटे बाद वहाँ पहुँच गया था।

(३) पहले कामराँ ने कंधार लेने का प्रयत्न किया था परंतु बैराम खाँ का पूरा प्रबंध देखकर वह क़िलात में सौदागरों के घोड़े छीनता हुआ ग़ज़नी आया।

(४) कुछ मनुष्यों की सहायता से ग़ज़नी दुर्ग पर अधिकार हो गया और वहाँ का अध्यक्ष ज़ाहिदबेग जो बेगा बेगम की बहिन का पति था और अबुलफ़ज़ल के अनुसार नशे में चूर था मार डाला गया।

म्मद अली मामा[1] को जो स्नान-घर में था उसी समय उसने मार डाला और मुल्ला अब्दुल खालिक़ की पाठशाला में ठहरा।

जिस समय बादशाह दुर्ग ज़फ़र की ओर गए थे उस समय नौकार को हरम के द्वार पर छोड़ गए थे। मिर्ज़ा कामराँ ने पूछा कि बाला हिसार पर कौन है? एक ने कहा कि नौकार है। इस बात को सुनते ही नौकार उसी समय स्त्रियों का सा वस्त्र पहिरकर बाहर निकला था कि मिर्ज़ा कामराँ के मनुष्यों ने हिसार के द्वार-रक्षक को पकड़ लिया और वे उसे मिर्ज़ा के पास ले गए। उन्होंने आज्ञा दी कि कारागार में रक्खो। इसके अनंतर मिर्ज़ा कामराँ के मनुष्यों ने बाला हिसार जाकर अगणित वस्तु और हरम के सामान को लूटकर मिर्ज़ा कामराँ की कचहरी में ला पटका। बड़ी बेगमों को मिर्ज़ा अस्करी के गृह में ठहराया गया और उस गृह के द्वार को ईंट, चूने आदि से बंद करवा दिया गया। खाने पीने का सामान उस गृह की चहारदीवारी के ऊपर से दिया जाता था। मिर्ज़ा यादगार नासिर जिस गृह में थे उसमें मिर्ज़ा ने ख़्वाजा मुअज़्ज़म[2]

---

(१) माहम बेगम का यह भाई था। निज़ामुद्दीन अहमद लिखता है कि दुर्ग में पहुँचने पर कामराँ ने फ़ज़ायल बेग और मेहतर वकील की आँखों में सलाई फिरवा दी।

(२) ख़्वाजा मुअज़्ज़म ख़्वाजा रशीदी को जो एराक़ से बादशाह के साथ आया था दुर्ग ज़फ़र में मारकर काबुल भाग आया था जहाँ वह परिवार सहित निगरानी में था। इसे प्रतिष्ठा देने और हुमायूँ को चिढ़ाने के लिए यह किया गया था।

को ठहराया और जिस महल में बादशाही हरम और दूसरी बेगमें थीं उसमें अपनी बेगमों आदि को रहने की आज्ञा दी। उन सिपाहियों के स्त्री-पुत्रादि के साथ बहुत कुव्यवहार किया गया जो भागकर बादशाह की सेवा में चले गए थे। उसने हर एक के गृह को गिरवाकर नष्ट कर दिया और हर एक के परिवार को किसी दूसरे को सौंप दिया। जब बादशाह ने सुना कि मिर्ज़ा कामराँ बक्खर से आकर ऐसा बर्त्ताव कर रहा है तब वे दुर्ग ज़फ़र और अँदराब से काबुल को चले और दुर्ग ज़फ़र[1] मिर्ज़ा सुलेमान को दे दिया।

जब बादशाह काबुल के पास पहुँचे तब मिर्ज़ा कामराँ ने मेरी माता और मुझको घर से बुलवाया और मेरी माता को आज्ञा दी कि शस्त्र बनानेवाले के गृह में रहो। मुझसे कहा कि यह भी तुम्हारा गृह है यहीं रहो। मैंने कहा कि यहाँ किस लिए रहूँ, जहाँ मेरी माता रहेंगी वहाँ मैं भी रहूँगी। मेरे उत्तर में उन्होंने कहा कि तुम ख़िज़्र ख़्वाजा ख़ाँ को लिखो कि आकर मुझसे मिल जायँ और धैर्य रखें। जिस प्रकार मिर्ज़ा अस्करी और मिर्ज़ा हिंदाल मेरे भाई हैं उसी प्रकार वह भी हैं और यह समय सहायता का है। मैंने उत्तर दिया कि ख़िज़्र ख़्वाजा ख़ाँ के पास मेरा हस्ताक्षर नहीं है

---

(१) तबक़ाते-अकबरी में लिखा है कि हुमायूँ ने बदख़्शाँ और क़ुंदज़ अधिकृत करके मिर्ज़ा हिंदाल को दिया था पर अब सब मिर्ज़ा सुलेमान को लौटा दिया।

जिससे वे मेरे पत्र को पहिचानें, क्योंकि मैंने स्वयं कभी उन्हें नहीं लिखा है। वे अपने पुत्रों द्वारा मुझे लिखते हैं, आगे तुम्हारी जो इच्छा हो वह लिख भेजो। अंत में उन्होंने मेहदी सुलतान और शेर अली खाँ को बुलाने के लिए भेजा। मैंने पहले ही खाँ से कह दिया था कि तुम्हारे भाई लोग[1] मिर्ज़ा कामराँ के यहाँ हैं स्यात् तुम्हारा भी विचार हो कि उनके यहाँ जाकर अपने भाइयों का साथ दें। परंतु सहस्र बार कभी बादशाह के विरुद्ध होने का विचार मत करना। ईश्वर को धन्यवाद है कि जैसा मैंने कहा था ख़ाँ ने वैसाही किया।

जब बादशाह ने सुना कि मेहदी सुलतान और शेर अली को मिर्ज़ा कामराँ ने ख़िज्र ख़्वाजा ख़ाँ को लाने के लिये भेजा है तब उन्होंने मिर्ज़ा हाजी के पिता क़ंबर बेग को उसे बुलाने के लिये भेजा। उस समय ख़ाँ अपनी जागीर पर थे इससे उन्होंने कहला भेजा कि कभी भी मिर्ज़ा कामराँ का साथ मत करना और हमारे यहाँ चले आओ। अंत में ख़िज्र ख़्वाजा ख़ाँ यह समाचार और शुभ संदेशा सुनते ही दरबार को चला और अक़ाबैन[2] में पहुँचकर बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ।

(१) ख़िज्र ख़्वाजा ख़ाँ यासीन दौलात (आक़ सुलतान) का भाई था।

(२) ओक़ाब का अर्थ गिद्ध है जिसका बहुबचन अक़बान होता है। ओक़ाबैन का अर्थ लोहे के काँटे हैं जिसका अर्थ अंग्रेज़ी अनुवादिका ने दो गिद्ध किया है पर वह अशुद्ध है। अक़ाबैन का अर्थ दो डंडे हैं जिनमें दोषी बाँधे जाते हैं। (गिआसुल्लुग़ात)

जब बादशाह मनार पहुँचे उस समय मिर्ज़ा कामराँ ने शिरोया के पिता शेर अफ़गन[1] को अपनी कुल सज्जित सेना सहित आगे[2] भेजा कि जाकर युद्ध करे। हम लोगों ने ऊपर से देखा कि वह डंका बजाता बावा दश्ती के आगे निकल गया। तब हम लोगों ने आपस में कहा कि ईश्वर तुम्हारे कर्म में न लिखे हो कि जाकर युद्ध करो। इसके अनंतर हम लोग रोने लगीं।

जब वह डीहे अफ़ग़ानाँ[3] के पास पहुँचा तब दोनों ओर के हरावलों का सामना होगया। सामना होते ही शाही हरावल ने मिर्ज़ा के हरावल को परास्त[4] किया और बहुतों को

---

(१) चौसा युद्ध में बेगा बेगम के बचाने में प्राण खोनेवाले .कूच बेग नामक सर्दार का पुत्र था।

(२) तबक़ाते-अकबरी में लिखा है कि शेर अफ़गन और शेर अली .जुहाक और गोरबंद तक गए और उन्होंने रास्ता रोक लिया। हुमायूँ ने .जुहाक की घाटी की नदी पार की और शेर अली को आगे से हटा दिया। तब हुमायूँ शाकी नदी को पार कर डीहे अफग़ानाँ में पहुँचा।

(३) काबुल के पास आस्माई पहाड़ी के नीचे है।

(४) निज़ामुद्दीन अहमद, जौहर आदि इस युद्ध का योरत जलगा में होना लिखते हैं। शाही हरावल मिर्ज़ा हिंदाल की अध्यक्षता में था और युद्ध बहुत कड़ा तथा देर तक हुआ था। हिंदाल की सहायता के लिये क़राचा ख़ाँ आज्ञा लेकर गया और उसने शेर अफ़गन को द्वंद्व युद्ध में परास्त कर पकड़ लिया। इसके और अन्य सर्दारों के कहने से वह मार डाला गया।

पकड़कर बादशाह के सामने ले आए। बादशाह ने आज्ञा दी कि मुग़लों को टुकड़े टुकड़े कर डालो। मिर्ज़ा कामराँ के बहुत मनुष्य जो युद्ध को आए थे शाही मनुष्यों के हाथ पकड़े गए जिनमें बहुतों को बादशाह ने मरवा डाला और बहुत से क़ैद हुए। इन्हीं में मिर्ज़ा कामराँ का एक सर्दार जोकी ख़ाँ भी पकड़ा गया था।

बादशाह विजय के कारण बाजे बजवाते बड़े ऐश्वर्य और तैयारी के साथ अक़ाबैन गए। इनके साथ मिर्ज़ा हिंदाल भी थे। वहाँ उन्होंने अपने लिये खेमे आदि तैयार कराए और मिर्ज़ा हिंदाल को पुल मस्तान[1] के मोर्चे पर और दूसरे अमीरों को और और स्थान के मोर्चों पर नियुक्त किया।

सात महीने[2] तक घेरा रहा। दैवात् एक दिन मिर्ज़ा कामराँ गृह में से आँगन में आगए थे कि एक मनुष्य ने अक़ाबैन से गोली चलाई। वह दौड़कर आड़ में होगए और कहा कि अकबर बादशाह को सामने लाकर रखो[3]। अंत में लोगों

(१) कोह-याक़ूब के दर्रे से निकली हुई नदी पर यह पुल बना हुआ है।

(२) जौहर ने केवल तीन महीना लिखा है।

(३) गुलबदन बेगम ने इस बात का कहीं समर्थन नहीं किया है कि माहम अनगा अकबर की सेवा पर नियत थी और न यही कि उसने अकबर को उसके रक्षार्थ अपनी गोद की आड़ में करके अपने को संकट में डाला था। उसने उसके पति नदीम कोका को अकबर की सेवा पर नियुक्त होने का कई बार ज़िक्र किया है।

ने बादशाह हुमायूँ से प्रार्थना की कि मिर्ज़ा मुहम्मद अकबर को सामने ला रखा है। बादशाह ने आज्ञा दी कि गोली न चलाई जाय। इसके अनंतर शाही सैनिकों ने बाला हिसार पर गोली नहीं चलाई पर काबुल से मिर्ज़ा कामराँ के मनुष्य शाही सेना पर अक़ाबैन में गोली चलाते रहे। शाही मनुष्यों ने मिर्ज़ा अस्करी को सामने लाकर खड़ा कर दिया और उनकी हँसी लेने लगे। मिर्ज़ा कामराँ की सेना भी दुर्ग से बाहर निकलकर युद्ध करती और दोनों ओर के मनुष्य मारे जाते थे। शाही सेना बहुधा विजयी होती इससे फिर बाहर आने का साहस किसी को नहीं पड़ा[1]। बादशाह सँतानों, बच्चों, बेगमों और अपनी प्रजा आदि के विचार से नगर पर गोले नहीं गिरवाते थे और बड़ों के गृहों को चोट नहीं पहुँचाते थे।

जब बहुत दिनों में घेरा पूरा होगया तब (बेगमों ने) ख़्वाजा दोस्त ख़ाविंद मदारिचः[2] को बादशाह के पास भेजा कि ईश्वर

---

(१) शेर अली जो बड़ा साहसी पुरुष था प्रति दिन बाहर निकलता था और खूब लड़ता था; एक दिन शेर अली और हाजी मुहम्मद खाँ का सामना हो गया जिसमें हाजी घायल हो गया। चारकारां में घोड़ों के सौदागरों का आना सुनकर कामरां ने शेर अली को सेना सहित घोड़ों को लाने के लिये भेजा। हुमायूँ ने यह सुनकर झट जाने आने का रास्ता बंद कर दिया। कामरां ने दुर्ग से और शेर अली ने बाहर से आक्रमण किया पर परास्त हो दोनों को भागना पड़ा। तब से युद्ध रुक गया। (तबक़ाते-अकबरी)

(२) फ़क़ीर मदार को माननेवाला होने से मदारिचः कहलाया— बेगमों ने इसीसे यह संदेशा भेजा था। जिस प्रकार काबुल के पहले

के लियें मिर्ज़ा कामराँ जो कुछ प्रार्थना करें उसको मान लीजिए और ईश्वर के दासों को कष्ट से छुट्टी दीजिए।

बादशाह ने उनके लिये बाहर से नौ भेड़ें, सात कंटर गुलाब-जल, एक कंटर निब्बू का शर्बत, तिरसठ थान और कई अध-बहियाँ भेजीं[1] और लिखा कि उन्हीं के कारण मैं दुर्ग बलपूर्वक नहीं ले सकता कि कहीं शत्रुगण उनसे और प्रकार का वर्त्ताव न करें।

उन्हीं दिनों सुलतान बेगम की जो दो वर्ष की थी मृत्यु हो गई थी। बादशाह ने लिखा कि यदि बल-पूर्वक दुर्ग पर अधिकार किया जाता तो मिर्ज़ा मुहम्मद अकबर भी कभी ही लुप्त हो जाते।

बाला हिसार में संध्या से सबेरे तक सर्वदा मनुष्यों का आना जाना और हल्ला रहता था पर जिस रात्रि[2] को मिर्ज़ा

घेरे में कामराँ ने इसे हुमायूँ के पास भेजा था उसी प्रकार इस बार भी संधि की बात के लिए भेजा होगा जिससे वह बेगमों का भी संदेशा ला सके।

(१) हुमायूँ ने ख्वाजा ही के हाथ यह भेंट और संदेशा भेजा होगा।

(२) २७ अप्रैल सन् १५४७ ई० को (७ रबीउल् अव्वल ९५४ हि०) कामराँ ने भागने के पहले संधि का प्रस्ताव किया था पर बादशाह के कहने पर कि वह स्वयं आकर क्षमाप्रार्थी हो वह नहीं आया। नामूसबेग (बापूस) और क़राचःख़ाँ से यह बड़ा क्रोधित था, इससे उसने नामूसबेग के तीन युवा पुत्रों को मरवाकर उनके शवों को नगर की दीवाल से बाहर फेंकवा दिया। इस कठोर कार्य से बाहर और भीतर दोनों ओर के मनुष्य घृणा करने लगे। उसने क़राचःख़ाँ के पुत्र सर्दार बेग को भी डोरी से बंध-वाकर दुर्ग पर से लटकवा दिया था। (तबक़ाते—अकबरी, इलिअट डाउ-सन, जि० ५ पृ० २२७)

कामरां भागे उस दिन संध्या बीत चुकी थी और सोने का भी समय हो गया था तब भी कुछ शब्द नहीं था। एक सीढ़ी थी जिससे मनुष्य नीचे से ऊपर जाते आते थे। जिस समय नगर के लोग सुख से सो रहे थे कि शस्त्र कवच आदि की झनझनाहट एक साथ आने से आपस में कहने लगे कि क्या शब्द है। घुड़साल के सामने ही लगभग एक सहस्र के मनुष्य खड़े थे। हम लोग शंका में ही पड़े थे कि एक बार ही वे बिना कुछ कहे चल दिए। क़राचःखाँ के पुत्र बहादुर खाँ ने आकर समाचार दिया कि मिर्ज़ा भाग गए[1]। डोरी को दीवाल पर से फेंक कर ख़्वाजा मुअज़्ज़म को उठा लिया[2] गया।

हम लोगों और बेगमों आदि के जो मनुष्य बाहर थे उन लोगों ने हम तक आनेवाले ऊपर के द्वार को खोल दिया। बेगा बेगम ने कहा कि अपने घरों को चला जावे। मैंने कहा

(1) निज़ामुद्दीन अहमद लिखता है कि मिर्ज़ा कामरां खिज्र ख़्वाजः की ओर दीवाल को फोड़कर सर्दारों (बाहरवाले जिन्होंने भागने की सम्मति दी थी) के बतलाए रास्ते से भाग गए। खिज्रख़्वाजः काबुल के बाहर एक स्थान है। भागने का समाचार मिलने पर हुमायूँ ने कामरां का पीछा करने के लिये सवार भेजा था परंतु पकड़े जाने पर कहने सुनने पर वे छोड़ दिए गए। जौहर लिखता है कि हिंदाल भेजे गए थे और निज़ामुद्दीन अहमद लिखता है कि हाजी महम्मद कूकी भेजे गए थे।

(2) ख़्वाजा मुअज़्ज़म काबुल में ही था और कामरां स्यात् उसे अपने साथ लिवा जाता था पर वह साथ न जाकर लौट आया और बेगमों आदि ने रस्सी के द्वारा उसे दुर्ग के भीतर ले लिया था।

कि कुछ समय तक धैर्य रखिए, गली से जाना पड़ेगा, कहीं बादशाह के यहाँ से कोई आता हो। इसी समय अंबर नाज़िर आया और बोला कि बादशाह ने आज्ञा दी है कि जब तक हम न आवें तब तक उन घरों से कोई न निकले। कुछ समय व्यतीत होने पर बादशाह आए और दिलदार बेगम और मुझ से मिले। इसके अनंतर बेगा बेगम और हमीदा बानू से मिलकर उन्होंने कहा कि इस गृह से झट निकलिए, ईश्वर मित्रों को ऐसे गृह से बचावे और यह शत्रुओं के भाग्य में हो। नाज़िर से कहा कि तुम एक ओर ठहर जाओ और एक ओर तर्दी मुहम्मद ख़ाँ रहे जिससे बेगमें बाहर जावें। अंत में सब आईं और वह रात्रि बादशाह की सेवा में प्रसन्नता के साथ ऐसी व्यतीत होगई कि थोड़े समय में सबेरा होगया।

माहचूचक बेगम,[1] ख़ानिश आग़ा[1] और दूसरे हरमों से जो बादशाह के साथ सेना में थीं उनसे हम लोग भी मिलीं।

---

(१) माहचूचक बेगम—बैराम ओग़ला और फ़रेदू ख़ां की बहिन थी। सन् १५४१ ई० में इसका विवाह हुमायूँ के साथ हुआ, १५५३ ई० में मुहम्मद हकीम और १५५४ ई० में फ़र्रुख़फ़ाल दो पुत्र हुए। पुत्री चार हुईं जिनके नाम बख़्तुन्निसा, सकीना बेगम, अमनः बेगम और फ़ख़्रुन्निसा बेगम हैं। जब हुमायूँ ने बदख़्शां पर चढ़ाई की थी तब यह साथ थी और उनके मांदे होने पर उसने बड़ी सेवा की थी। सन १५५४ ई० में हुमायूँ ने मिर्ज़ा हकीम को नाम के लिये काबुल का सूबेदार नियत किया और मुनइम ख़ाँ के हाथ कुल प्रबंध का भार सौंपा। सन् १५५६ ई० में अकबर ने इन नियुक्तियों को ज्यों का त्यों रहने दिया। सन् १५६१ ई०

जिस समय बादशाह बदख़्शाँ गए उस समय माहचूचक बेगम को पुत्री उत्पन्न हुई। उसी रात्रि बादशाह ने स्वप्न में देखा कि मेरी मामा फ़ख्रुन्निसा और दौलतबख़्त दोनों द्वार से भीतर आई हैं और उन्होंने कुछ वस्तु लाकर हमारे आगे रख दी है।

में मुनइम ख़ाँ अपने पुत्र ग़नी को अपना पद सौंप दर्बार में गया परंतु ग़नी की अयोग्यता के कारण बेगम ने उसे काबुल से निकाल दिया और कुल प्रबंध अपने हाथ में ले लिया। बेगम ने क्रमशः तीन सर्दारों को प्रबंध में अपना सहायक बनाया और मरवा डाला। अकबर ने मुनइम ख़ाँ को कुछ सेना सहित प्रबंध ठीक करने के लिये भेजा पर जलालाबाद में बेगम ने उसे परास्त कर भगा दिया। इसके अनंतर हैदर क़ासिम कोहबर को मंत्री बनाया जिसके साथ स्यात् स्वयं विवाह भी कर लिया था। सन १५६४ ई० में शाह अबुल्मआली भारत से भागकर काबुल आया इसके साथ बेगम ने अपनी पुत्री फख्रुन्निसा बेगम का विवाह कर दिया और धीरे धीरे काबुल में वह प्रधान हो गया। उसी वर्ष अबुल्मआली ने अपने हाथ से माहचूचक बेगम और हैदर क़ासिम कोहबर को मार डाला। मिर्ज़ा सुलेमान ने बदख़्शाँ से आकर काबुल पर अधिकार कर लिया और इसे मार डाला।

ख़ानिश आग़ा—जूजुक मिर्ज़ा ख्वारिज़्मी की पुत्री और हुमायूँ की स्त्री थी। सन् १५५३ ई० के जिस महीने में मिर्ज़ा हकीम हुए थे उसी महीने में इसे इब्राहीम पैदा हुआ था (१५ जमादिउल् अव्वल सन् ९६० हि० अर्थात् १४ अप्रैल सन् १५५३ ई०) पर बचपन ही में जाता रहा। बायज़ीद इसके पुत्र का नाम फ़र्रुख़फ़ाल लिखता है पर यह ठीक नहीं है क्योंकि वह माहचूचक बेगम का पुत्र था और गुलबदन बेगम तथा अबुलफ़ज़ल इसके विरुद्ध लिखते हैं। तुर्की एडमिरल सीदी अली रईस जो सन् १५५५ ई० में भारत और काबुल होता हुआ तुर्की गया था लिखता है कि वह उस समय जीवित था।

बहुत कुछ विचार पर कि इसका क्या फल है अंत में यह समझ में आया कि पुत्री हुई है। इससे दोनों के नाम से निसा और बख़्त लेकर संक्षेप की चाल पर उसका नाम बख़्तुन्निसा बेगम[1] रखा गया।

माहचूचक बेगम को चार पुत्री और दो पुत्र हुए—बख़्तुन्निसा बेगम, सकीना बेगम[2], अमनः बानू बेगम, महम्मद हकीम मिर्ज़ा और फर्रुख़फ़ाल मिर्ज़ा[3]। जिस समय बादशाह हिंदुस्थान को चले उस समय माहचूचक बेगम गर्भवती थीं। काबुल में पुत्रोत्पत्ति हुई जिसका फ़र्रुख़फाल मिर्ज़ा नाम रख गया। कुछ दिन के अनंतर ख़ानिश आग़ा को पुत्र हुआ जिसका नाम इब्राहीम सुलतान मिर्ज़ा रखा गया।

---

(१) ब.ख़्तुन्निसा बेगम—सन् १५५०ई० में जन्म हुआ था। सन् १५८४-८५ ई० में हकीम की मृत्यु पर अपने पुत्र दिवाली सहित काबुल से भारत आई। सलीम को समझाने के लिये यह भी सलीमा सुलतान बेगम के साथ गई थी।

(२) सकीना बानू बेगम—अकबर के मित्र नक़ीब ख़ाँ क़ज़्विनी के पुत्र शाह ग़ाज़ी ख़ाँ से ब्याही थी।

(३) गुलबदन बेगम ने लिखा है कि चार पुत्री हुईं पर नाम तीन ही के दिए हैं इससे यही समझना ठीक होगा कि उनमें एक पैदा होते ही मर गई होगी, क्योंकि यदि नाम-करण होगया होता तो बेगम उस नाम को न भूल जातीं और यदि ऐसा हो जाता तो स्वभावानुसार पूछकर लिख देतीं। दूसरे इतिहासकारों ने एक पुत्री का नाम फ.ख़्रुन्निसा लिखा है जिसका अबुल्‌मआली और ख़्वाजा हसन नक्शबंदी के साथ विवाह होना लिखा गया है, पर वह बख़्तुन्निसा ही रही होगी।

बादशाह ने पूरे डेढ़ वर्ष[1] काबुल में सुख और प्रसन्नता के साथ व्यतीत किए।

मिर्ज़ा कामराँ काबुल से भागने पर बदख़्शाँ गए जहाँ वे तालिक़ान में ठहरे हुए थे। बादशाह ओरतः बाग़ में थे। सबेरे की निमाज़ से उठने पर समाचार मिला कि मिर्ज़ा कामराँ के सर्दारगण जो बादशाह की सेवा में थे भाग गए। जैसे क़राचः खाँ, मुसाहिब खाँ, मुबारिज़ खाँ, बापूस आदि[2] बहुत से कापुरुष रात्रि में भागकर बदख़्शाँ गए और मिर्ज़ा कामराँ से मिल गए। बादशाह शुभ साइत में बदख़्शाँ को चले और उन्होंने मिर्ज़ा कामराँ को तालिक़ान में जाकर घेर लिया।

कुछ समय के बाद मिर्ज़ा कामराँ ने अधीनता और आज्ञा मानना स्वीकार कर लिया और वह बादशाह की सेवा में चला आया[3]। बादशाह ने मिर्ज़ा कामराँ को कोलाब, मिर्ज़ा सुलेमान

---

(१) १२ जून सन् १५४८ ई० को वे उत्तर की ओर रवाना हुए थे इससे डेढ़ वर्ष कुछ अधिक है।

(२) क़राचः खाँ और बापूस के परिवार की मिर्ज़ा कामराँ ने कितनी प्राण और मान-हानि की थी तिसपर भी ये उसके पास भागकर चले गए। निज़ामुद्दीन अहमद लिखता है कि क़राचःखाँ आदि सर्दारों ने हुमायूँ से प्रस्ताव किया कि ख़्वाजा ग़ाज़ी वज़ीर को मारकर ख़्वाजा क़ासिम को उस पद पर नियुक्त करना चाहिए। हुमायूँ के नहीं मानने पर वे भाग गए।

(३) तालिक़ान दुर्ग के बाहर युद्ध में परास्त होने पर दुर्ग में आ बैठा और दो महीने के घेरे पर अधीनता स्वीकार कर बादशाह के नाम

को दुर्ग ज़फ़र, मिर्ज़ा हिंदाल को कंधार और मिर्ज़ा अस्करी को तालिक़ान दिया।

एक दिन किशम[1] में खेमा ताना गया और सब भाई एकत्र हुए अर्थात् हुमायूँ बादशाह, मिर्ज़ा कामराँ, मिर्ज़ा अस्करी, मिर्ज़ा हिंदाल और मिर्ज़ा सुलेमान[2]।

कुछ नियम[3], जो बादशाह की सेवा में आए हुए लोगों के लिए बने थे उनके अनुसार बादशाह ने आज्ञा दी कि लोटा और बर्त्तन लाओ कि हाथ धोकर सब एक साथ खाना खायँ। बादशाह ने हाथ धोया तब मिर्ज़ा कामराँ ने धोया। अवस्था में मिर्ज़ा सुलेमान मिर्ज़ा अस्करी और मिर्ज़ा हिंदाल से बड़े थे, इससे दोनों भाइओं ने प्रतिष्ठार्थ झारी और थाली उनके आगे रख दी।

हाथ धोने पर मिर्ज़ा सुलेमान ने नाक से छिनका जिसपर मिर्ज़ा अस्करी और मिर्ज़ा हिंदाल बहुत बिगड़े और बोले कि कैसा गँवारपन है? प्रथम हमें बादशाह के सामने हाथ

खुतबा पढ़वाया। दूसरे दिन रात्रि को भागा और वेगी नदी के किनारे ठहरा जहाँ मिर्ज़ा इब्राहीम ने आक्रमण कर उसे कैद कर लिया। वहाँ से कामराँ बादशाह के पास लाया गया। (जौहर)

(१) अबुलफ़ज़ल इस्कामिस स्थान बतलाता है जो हुमायूँ की इस यात्रा से ठीक मालूम होता है।

(२) चचेरे भाई थे।

(३) तोरः का अर्थ रस्म आदि है और मुख्य कर वह जिसे चंगेज़ ख़ाँ ने चलाया है।

धाने का क्या अधिकार है पर जब उन्होंने आज्ञा दी तब उसे बदल नहीं सकते। नाक छिनकने का क्या अर्थ है? अंत में मिर्ज़ा अस्करी और मिर्ज़ा हिंदाल ने बाहर जाकर हाथ धोए और तब आकर बैठे। मिर्ज़ा सुलेमान बड़े लज्जित हुए और सब ने एक दस्तरख़्वान पर भोजन किया।

बादशाह ने इस मजलिस में मुझ तुच्छ को भी याद किया और अपने भाइओं से कहा था कि लाहौर में गुलबदन बेगम कहती थीं कि मेरी इच्छा है कि सब भाइओं को एक स्थान पर देखूँ। सबेरे से सबके एक साथ बैठने के कारण यह बात मेरे ध्यान में आगई और ईश्वर ऐसी इच्छा करे कि इस मंडली को वह अपनी रक्षा में रखे। ईश्वर पर प्रकट है कि मेरे हृदय में यह नहीं है कि किसी मुसलमान का बुरा चाहूँ तब कैसे हो सकता है कि भाइओं की बुराई चाहूँगा? ईश्वर तुम लोगों के हृदय में यही एकता का विचार रखे कि जिससे हम लोग एक बने रहें।

प्रजा में भी बड़ी प्रसन्नता फैली हुई थी क्योंकि बहुत से सर्दार और सेवक भी अपने संबंधियों और भाइओं से मिले थे जो अपने स्वामियों के विरोध से एक दूसरे से अलग अलग रहते थे, या यों कहिए कि एक दूसरे के रक्तपिपासु हो रहे थे। अब एक स्थान पर सब प्रसन्नता से दिन व्यतीत कर रहे थे।

बदख्शाँ से आने पर बादशाह काबुल में डेढ़ वर्ष रहे

बलख़ जाने की इच्छा की और दिलकुशा बाग़ में उतरे। उसी के पाईं बाग़ के सामने बादशाह का वासस्थान बना और कुलीबेग की हवेली में जो पास थी बेगमें उतरीं।

बादशाह से कई बार प्रार्थना की गई थी कि रिवाज[1] किस प्रकार निकला हुआ होगा। बादशाह ने कहा कि सेना सहित कोहदामन से जब जाऊँगा तब तुम लोग भी जाकर रिवाज को देखना। दूसरे निमाज़ के समय[2] बादशाह सवार होकर

---

(१) रिवास, रिवास, रिवाज या जिगारी (निशापुर के एक आदमी के नाम पर नाम रखा गया जिसने कि इसका पता लगाया था) की झाड़ी दो तीन फुट ऊँची होती है और देखने में चुकंदर की तरह होती है। बीच की एक या दो शाखें कुछ मोटी होती हैं और पत्तियाँ चिकनी और हरी होती हैं जो जड़ के पास हलकी बैंगनी रंग की तथा हाथ के इतनी लंबी और बड़ी होती हैं। शाख़ के भीतर का गूदा सफ़ेद, हलका, रसीला और कुछ खटास लिए होता है। जड़ को रावंद कहते हैं। फूल लाल होता है और उसका स्वाद खटास और मिठास दोनों लिए होता है। इसका बीज उस पतली और लंबी शाख के सिरे पर होता है जो पौधे के बीच में साल भर में एक बार निकलती है। पहाड़ी ज़मीन में जहाँ बर्फ अधिक गिरती है यह होता है। सब से अच्छा फ़ारस में पैदा होता है। औषधि के रूप में यह संकोचक है, पेट शुद्ध करता है और भूख बढ़ाता है। इसके रस का अंजन आँखों की रोशनी बढ़ाता है और जौ के आटे के साथ इसकी पुलटीस घावों को बड़ा लाभ पहुँचाती है। (मख़ज़नुल अदवीयः)

(२) बेगमें जाने के लिए पहले ही से तैयार बैठी थीं और रवानः होने के लिये यह इशारा पहले ही से बँधा हुआ था।

दिलकुशा बाग़ को आए और कुली बेग की हवेली के पास जिसमें बेगमें थीं और पास ही तथा ऊँचे पर थी पहुँचकर खड़े हो गए। बेगमों ने देखा और खड़े होकर प्रणाम किया। बेगमों के प्रणाम करते ही बादशाह ने अपने हाथ से इशारा किया कि आओ।

फ़ख़ुन्निसा मामा और अफ़ग़ानी आग़ाचः आगे बढ़ीं। पहाड़ के नीचे दिलकुशा बाग़ के बीच में जो नहर थी उसे अफ़ग़ानी आग़ाचः पार नहीं कर सकीं और घोड़े से गिर पड़ीं जिससे एक घंटे की देर हो गई[1]। अंत में एक घंटे पर बादशाह की सेवा में चले। माहचूचक बेगम के अनजान में घोड़ा कुछ ऊँचे चढ़ गया[2]। इसके लिए बादशाह को बहुत कष्ट हुआ। बाग़ ऊँचे पर है और अभी तक दीवार नहीं बनी थी। इसी समय बादशाह के मुख पर कुछ कष्ट[3] झलकने लगा, तब उन्होंने कहा कि तुम लोग चलो हम अफ़ीम खाकर इस कष्ट को दूर करके आवेंगे। हम लोग आज्ञानुसार थोड़ा रास्ता चले थे कि बादशाह आ पहुँचे। मुख की मलिनता अच्छी तरह साफ़ होगई थी और प्रसन्नता आ गई थी।

---

(१) गिरना अशकुन माना जाता है इसलिये कुछ देर तक ठहर कर आगे बढ़े। इन अशकुनों का फल भी यही हुआ कि बलख़ की चढ़ाई का कुछ भी फल नहीं निकला।

(२) इसका अर्थ घोड़े का अलफ़ करना भी हो सकता है पर बाग़ की दीवाल के नहीं होने से यहाँ यही अर्थ ठीक समझा गया है।

(३) दूसरी दुर्घटना भी कुशकुन ही मानी गई इसीसे हुमायूँ को कष्ट हुआ।

चाँदनी रात थी। बात करते और कहानी कहते चले। ख़ानिश आग़ाचः, ज़रीफ़ गानेवाली, सरोसही और शाहिम आग़ा धीरे धीरे क़व्वाली गा रही थीं।

लग़मान[1] पहुँचने तक शाही ख़ेमे, शामिआने और बेगमों की क़नात नहीं आ चुकी थी, केवल उस समय तक मेहआमेज़ क़नात[2] आई थी। बादशाह और हम सब तथा हमीदा बानू बेगम भी उसी क़नात में बादशाह की सेवा में दोपहर से रात तीन घड़ी बीत जाने तक रहे। अंत में हम सब वहीं उस सत्य-निष्ठ की सेवा में सोए और सबेरे इच्छा प्रकट की कि जाकर पहाड़ पर रिवाज देखें। बेगमों के घोड़े डीह में थे जिनके आने तक सैर का समय निकल जाता। बादशाह ने आज्ञा दी कि बाहर जिसके घोड़े हों सबको ले आओ। जब सब आगए तब उन्होंने सवार होने को कहा।

बेगा बेगम और माह चूचक बेगम अभी वस्त्र पहिर रही थीं। मैंने बादशाह से प्रार्थना की कि यदि आज्ञा हो तो जाकर उन्हें लिवा लाऊं। उन्होंने कहा कि जाकर झट लिवा लाओ। मैंने बेगा, माहचूचक आदि बेगमों और हरमों से कहा कि मैं बादशाह के विचार की दासी हूँ—तुम लोग किस लिये देर

(१) मूल ग्रंथ के जिल्द बाँधने में यहाँ का एक पन्ना आगे चला गया था। लग़मान की सैर यहीं ठीक मालूम होती है क्योंकि कामराँ के अँधे होने के पहले ही हुमायूँ की सैर का पता ठीक मालूम पड़ता है।

(२) यह क़नात हमीदः बानू बेगम की ही रही होगी।

करती हो। इन लोगों को एकत्र कर मैं लिवा ला रही थी कि बादशाह मेरे सामने आ पहुँचे और कहने लगे कि गुलबदन ! अब सैर का समय निकल गया। वहाँ पहुँचने तक हवा गरम हो जायगी। ईश्वरेच्छा से दोपहर की निमाज़ पढ़कर चलेंगे। एक ही खेमे में वे हमीदा बानू बेगम के साथ ठहर गए। दो पहर की निमाज़ के अनंतर घोड़ों के आने तक दो निमाज़ हुई। इसी समय बादशाह चल दिए।

पहाड़ के नीचे जंगल में हर स्थान पर रिवाज की पत्तियाँ निकल आई थीं। वहाँ घूमते फिरते संध्या हो गई। वहीं कनात और खेमे खड़े कर ठहर गए। वह रात वहीं प्रसन्नता से व्यतीत हो गई और हम लोग भी उन्हीं सत्यनिष्ठ की सेवा में रहे। सबेरे निमाज़ के समय बाहर गए और बाहर ही से बेगा बेगम, हमीदा बानू बेगम, माहचूचक बेगम, मुझे और सब बेगमों को अलग अलग पत्र लिखा कि अपने अपने दोषों को मानकर प्रार्थना-पत्र लिखो[1]। ईश्वरेच्छा से बिदा होकर मैं फ़र्ज़ः या इस्तालीफ़ में सेना से जा मिलूँगा और नहीं तो अलग रहूँगा। अंत में हम लोगों ने क्षमा के लिए पत्र लिखकर बादशाह के पास भेजा। तब बादशाह और हम सब बेगमें सवार होकर

(१) हुमायूँ को अप्रसन्न हो जाने का कुछ झक सा रहता था। यह भी संभव है कि यहाँ एक पत्र और भी रहा हो जिसमें बेगमों के कुछ और दोष लिखे रहे हों। इसके अनंतर बेगमों को बातचीत आदि का समय नहीं मिला और वे अलग अलग रहीं।

लगमान से बिहज़ादी आए। रात में हर एक अपने स्थान को गया और सबेरे वहीं भोजन किया। दोपहर की निमाज़ के समय सवार होकर फ़र्ज़ः आए।

हमीदा बानू बेगम ने हम लोगों के गृहों पर नौ नौ भेंड़ें भेजीं। एक दिन प्रथम ही बीबी दौलतबख़्त फ़र्ज़ः आ चुकी थीं और उन्होंने खाने का बहुत सा सामान, दूध, दही, शीरा और शर्बत आदि तैयार किया था। वह रात सुख से व्यतीत होने पर सबेरे ही हमलोगों ने फ़र्ज़ः के ऊपर के सुंदर झरने को देखा। वहाँ से इस्तालीफ़ जाकर बादशाह तीन दिन वहाँ रहे जिसके अनंतर कूच करके ६५८ हि०[1] में बलख़ को चले।

दर्रा पार करने पर बादशाह ने मिर्ज़ा कामराँ, मिर्ज़ा सुलेमान और मिर्ज़ा अस्करी को आज्ञापत्र भेजा कि हम उज़बेगों से युद्ध करने जा रहे हैं। यह समय एकता और भाईपन का है, चाहिए कि जल्दी आओ। मिर्ज़ा सुलेमान और मिर्ज़ा अस्करी[2] आकर बादशाह से मिल गए। सब कूच करते हुए बलख़ पहुँचे।

पीर मुहम्मद खाँ[3] बलख़ में था और पहले ही दिन उसके सैनिकों ने निकलकर व्यूह रचा। शाही सेना विजयी हुई और

(१) मिस्टर अर्सकिन ने ६५६ हि० (१५४६ ई०) को ठीक माना है और विवरण भी इससे कुछ भिन्न दिया है।

(२) निज़ामुद्दीन अहमद लिखता है कि मिर्ज़ा अस्करी ने शत्रुता दिखलाई और नहीं आया।

(३) जानी बेग का पुत्र था और इसी का पुत्र प्रसिद्ध अब्दुल्लाख़ाँ उज़बेग था। इसने ६७४ हि० (१५६७) तक राज्य किया।

पीर मुहम्मद के सैनिकगण परास्त[1] होकर नगर में चले गए। सवेरे पीर मुहम्मद खाँ ने विचार किया कि चग़त्ताई बलवान हैं, मैं युद्ध नहीं कर सकूँगा, इससे अच्छा होगा कि निकलकर चल दूं। इधर बादशाही सर्दारों में से एक ने प्रार्थना की कि कंप मैला हो गया है यदि यहाँ से हटाकर जंगल में तैयार किया जाय तो ठीक हो[2]। बादशाह ने आज्ञा दे दी कि ऐसा करो।

सामान और बोझों में हाथ लगाते ही दूसरे सैनिकगण घबड़ा गए और कुछ मनुष्य चिल्लाने लगे कि सेना कम है[3]। ईश्वर की इच्छा ऐसी ही थी कि शत्रु के विना प्रयत्न और पास

---

(१) पहले तीन सौ सवार शाह मुहम्मद सुलतान की अध्यक्षता में परास्त हुए तब दूसरे दिन वह स्वयं आविदखाँ के पुत्र अबुल्‌अज़ीज़ खाँ और हिसार के सुलतान के साथ युद्ध को निकला और परास्त हो दुर्ग में चला गया। (तबक़ाते-अकबरी)

(२) चग़त्ताई सर्दारों ने सभा करके निश्चित किया कि बलख़ नदी पार न की जाय बल्कि पीछे हटकर दर्रा गज़ में जो काबुल के रास्ते पर है एक दृढ़ स्थान पर ठहरा जाय जिससे कुछ दिन में बलख़ दुर्ग आपही टूटेगा। बहुत ज़ोर देने से हुमायूँ ने इस बात को मान लिया जिससे यह गड़बड़ हो गया। (तबक़ाते-अकबरी)

(३) जौहर और निज़ामुद्दीन अहमद दोनों ही लिखते हैं कि मिर्ज़ा कामराँ के साथ नहीं होने से सर्दारों और सैनिकों को यह डर लगा हुआ था कि वह काबुल पर अधिकार करके कहीं उनके स्त्री पुत्रादि को कष्ट न दे। यही घबड़ाहट मुख्य कारण था यद्यपि यह भी किसी इतिहास-कार ने लिखा है कि बुख़ारा से उज़बेगों की भारी सेना के आने का समाचार मिला था।

न होने पर भी अकारण सेना भाग गई। उज़बेगों को समाचार मिला कि शाही सेना भाग गई जिससे उन्हें आश्चर्य हुआ। शाही चोबदारों ने बहुत कुछ प्रयत्न किया पर कुछ लाभ नहीं हुआ और मना करने पर भी सेना नहीं रुकी। वह भाग गई पर बादशाह देर तक खड़े रहे और जब देखा कि कोई नहीं रहा तब लाचार वे स्वयं भी चल दिए। मिर्ज़ा अस्करी और मिर्ज़ा हिंदाल को पता नहीं था कि शाही सेना भाग गई है। वे सवार होकर आए तब देखा कि कंप में कोई नहीं है और उज़बेग बाहर निकलने ही पर हैं। ये भी क़ंदोज़ की ओर चल दिए। बादशाह कुछ दूर गए थे कि खड़े हो गए और बोले कि अभी तक भाइओं का पता नहीं मिला, आगे कैसे चलें। उन सर्दारों से जो साथ थे कहा कि कोई है जो मिर्ज़ों का समाचार लावे। किसी ने उत्तर नहीं दिया और कोई नहीं गया। इसके अनंतर मिर्ज़ा के आदमियों के यहाँ से क़ंदोज़ से समाचार आया कि सुना है कि पराजय हुई है पर नहीं ज्ञात है कि मिर्ज़ा किधर गए। इस पत्र के मिलने से बादशाह को और भी दुःख हुआ। ख़िज्र ख़्वाज़: ख़ाँ ने कहा कि यदि आज्ञा हो तो हम जाकर समाचार लावें। बादशाह ने कहा कि ईश्वर कृपा रखे और ऐसा होवे कि मिर्ज़ा क़ंदोज़ ही गए हों। दो दिन के अनंतर ख़िज्र ख़्वाज़: ख़ाँ मिर्ज़ा हिंदाल का समाचार लाए कि वे कुशलपूर्वक क़ंदोज पहुँच गए। यह समाचार सुनकर बादशाह बहुत प्रसन्न हुए।

बादशाह ने मिर्ज़ा सुलेमान को उनके स्थान दुर्ग ज़फ़र को विदा किया[1] और वे स्वयं काबुल आए।

मिर्ज़ा कामराँ को जो कोलाब में थे एक चतुर कुटनी स्त्री तुर्खान बेग: ने सुझाया कि तुम हरम बेगम पर प्रेम प्रकट करो जिसमें तुम्हारा भला है। मिर्ज़ा कामराँ ने उस बुद्धिहीन के कहने पर एक पत्र और रूमाल[2] बेगी आग: के हाथ हरम बेगम को भेजा। इस स्त्री ने पत्र और रूमाल को ले जाकर हरम बेगम के सामने रखा और मिर्ज़ा कामराँ का प्रेम और स्नेह उससे कहा। हरम बेगम ने कहा कि अभी इस पत्र और रूमाल को रखो जब मिर्ज़ा बाहर से आवें तब इसे लाओ। बेगी आग: रोने गाने और बिनती करने लगी कि मिर्ज़ा कामराँ ने इसको आपके लिए भेजा है और वे बहुत दिनों से आप पर प्रेम रखते हैं और आप ऐसी कठोरता करती हैं। हरम बेगम ने बड़ी घृणा और क्रोध से उसी समय मिर्ज़ा सुलेमान अपने पति और मिर्ज़ा इब्राहीम अपने पुत्र को बुलवाकर कहा कि मिर्ज़ा कामराँ ने तुम लोगों को कायर समझ लिया है जो ऐसा पत्र मुझे लिखा है। मैं इसी योग्य हूँ कि मुझे ऐसे लिखें। मिर्ज़ा कामराँ तुम्हारा बड़ा भाई है और मैं

---

(१) उ.जबेगों ने पीछा किया जिसके हरावल से मि.र्ज़ा सुलेमान परास्त होकर चल दिए। बादशाह को स्वयं शत्रु से लड़कर अपने लिए रास्ता बनाना पड़ा था। (तबक़ाते-अकबरी)

(२) रूमालों पर कारचोब से चित्र उभाड़े जाते हैं और इन पर रख कर पत्र, भेंट आदि दिए जाते हैं।

उसकी भयश्रो[1] होती हूँ तब भी मुझको ऐसा पत्र भेजा। इस स्त्री को पकड़वाकर टुकड़े टुकड़े करवा डालो जिससे औरों को डर हो और कोई दूसरों की स्त्रियों पर कुविचार की आँख न डाले। मनुष्य की बच्ची इस स्त्री के योग्य था कि ऐसी वस्तुएँ लावे और मुझसे तथा मेरे पुत्र से नहीं डरे[2]।

उसी समय बेगी आग़ः को जिसकी मृत्यु आ पहुँची थी पकड़कर टुकड़े टुकड़े कर डाला गया तथा मिर्ज़ा सुलेमान और मिर्ज़ा इब्राहीम ने इस कारण मिर्ज़ा कामराँ से बुरा मान लिया और उसके यहाँ तक शत्रु बन गए कि बादशाह को लिखा कि वह शत्रुता की इच्छा रखता है और इससे बढ़कर और किसी प्रकार यह नहीं जाना जा सकता कि ठीक बलख़ जाते समय उसने साथ नहीं दिया।

इसके अनंतर मिर्ज़ा कामराँ ने कोलाब में शंका[3] के मारे

(१) कियौन शब्द का अर्थ अनुज-बधू अर्थात् छोटे भाई की स्त्री है।

(२) बेगम युद्धप्रिय थीं और सेना पर भी उसका प्रभाव था जिससे उसकी सम्मति बिना मिर्ज़ा सुलेमान कभी युद्ध को नहीं जाते थे। इसी कारण यहाँ अपने पति के स्थान पर अपने को और पुत्र को कहा। कामराँ का प्रेम और तुर्खान बेगः की राय इसकी सेना ही के लिये थी न कि उसके लिये।

(३) कोलाब में कामराँ की स्त्री और हरम बेगम की बहिन माह बेगम के पिता सुल्तान वैस क़िबचाक़ और भाई शुक्रअली बेग थे। शुक्रअली बेग से और मिर्ज़ा कामराँ से कुछ झगड़ा हो गया था जिससे उसने कोलाब पर चढ़ाई की। कामराँ ने मिर्ज़ा अस्करी को सेना सहित भेजा पर वह दो युद्धों में परास्त होकर लौट गया। (तबक़ाते-अकबरी)

इससे अच्छा उपाय नहीं पाया कि स्वयं एकांतवासी[1] होजावे। उसने अपने पुत्र मिर्ज़ा अबुलक़ासिम (इब्राहीम) को अस्करी के यहाँ भेज दिया और अपनी पुत्री आयशा सुलतान बेगम[2] को साथ लेकर वह तालिक़ान की ओर चला। उसकी स्त्री ख़ानम भी थी जिससे उसने कहा कि तुम अपनी पुत्री सहित पीछे से

(१) मिर्ज़ा सुलेमान और मिर्ज़ा इब्राहीम ने किशम और कुंदोज़ से सेना सहित मिर्ज़ा कामराँ पर चढ़ाई की परंतु अपने में युद्ध करने की सामर्थ्य न देखकर वह रोस्तक़ चला गया। (तबक़ाते-अकबरी)

(२) आयशा सुल्तान बेगम मीरानशाही—फरिश्ता और ख़फ़ी ख़ाँ के अनुसार मिर्ज़ा कामराँ एक पुत्र और तीन पुत्रियों को छोड़कर मरा था।

गुलबदन बेगम पुत्र का नाम अबुलक़ासिम इब्राहीम लिखती हैं जो अकबरनामे में भी है। गुलबदन बेगम ने सबसे बड़ी पुत्री का नाम हबीबा और दूसरी का हाजी बेगम और आयशा सुलतान बेगम लिखा है। मुहतरिमा ख़ानम की पुत्री का ज़िक्र आकर रह गया है नाम नहीं दिया है। फ़रिश्ता नाम न देकर केवल यह लिखता है कि (क) एक पुत्री का विवाह इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा बैक़रा से हुआ था। (ख) दूसरी पुत्री का विवाह मिर्ज़ा अब्दुर्रहमान मुग़ल से हुआ था और (ग) तीसरी पुत्री का विवाह फ़ख़्रुद्दीन मशहदी से हुआ था जो सन् १५८० ई० के लगभग मर गया।

ख़फ़ी ख़ाँ नाम न देकर फरिश्ता ही का समर्थन करता है क्योंकि नाते में इब्राहीम हुसेन बैक़रा चचेरा भाई लग सकता है और मिर्ज़ा अब्दुर्रहमान जो ब्लौकमैन की सूची का नं० १८३ हो सकता है दोग़लात मुग़ल और मिर्ज़ा हैदर का चचेरा भाई है।

आओ। हम जहाँ ठहरेंगे तुमको वहाँ बुला लेंगे। पर उस समय तक तुम ख़ोस्त और अंदराब जाकर रहो। पूर्वोक्त ख़ानम का उज़बेग ख़ानों से संबंध था। इसी बीच इसके संबंधी उज़बेगों ने और और उजबेगों से कह दिया कि यदि इच्छा माल, दास और दासी लूटने की हो तो ले जाओ और बेगम को छोड़ दो क्योंकि आयशा सुलतान ख़ानम[1] का भतीजा यदि कल सुनेगा कि तुम सभों ने बेगमों को तंग किया तो वह अवश्य क्रोधित होगा। सैकड़ों उपाय और बहाने कर, दुःख उठा और सामान खोकर बेगम ने उज़बेगों के फंदों से छुटकारा पाया तथा वह ख़ोस्त और अंदराव पहुंचकर वहीं रहने लगी।

इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा बैक़रा की स्त्री का नाम गुलरुख़ बेगम था और सन् १५७३ ई० में पति की मृत्यु पर वह गुलबदन बेगम के साथ सन् १५७६ ई० में हज को गई। इन्हींका नाम ९८३ हि० के यात्रियों में अबुलफ़ज़ल ने हाजी बेगम और गुलएज़ार बेगम देकर इन्हें कामरां की पुत्रियां लिखा है। गुलरुख़ बेगम का ही नाम हाजी बेगम है जिससे भेंट करने अकबर गए थे और जो सन् १५८३ ई० में मरी। गुलएज़ार बेगम मुहतरिमा ख़ानम की पुत्री हो सकती है।

हबीबा बेगम का शाह सुलतान से सन् १५५१-२ ई० में संबंध टूटने पर उसका दूसरा विवाह (ख) और (ग) में से किसीसे हो सकता है। शाह सुलतान के मक्का जाने के अनंतर फिर उसका नाम नहीं सुन पड़ा।

आयशा सुलतान बेगम का भी (ख) और (ग) में से किसीसे विवाह हुआ होगा।

(1) आयशा सुलतान ख़ानम और ख़ातिम, मुग़ल ख़ानम, चग़त्ताई मुग़ल सुलतान महमूदख़ां की पुत्री थी। सन १५०३ ई०

मिर्ज़ा कामराँ ने बलख़ के पराजय का पता पाया और विचारा कि पहले की तरह मेरे ऊपर बादशाह की कृपा नहीं रही तब कोलाब से निकलकर इधर उधर घूमने लगा[1]।

इसी समय बादशाह काबुल से निकल कर जब क़िबचाक़ घाटी में पहुँचे तब अनजान में नीची भूमि पर उतरे थे कि मिर्ज़ा कामराँ एकाएक ऊँचाई पर से सशस्त्र और सन्नद्ध हो बादशाह पर आ टूटा[2]। ईश्वर की इच्छा ऐसी ही थी कि एक हृदय के

में अपने पिता के घर की स्त्रियों के साथ शैबानी खाँ के हाथ पकड़ी गई जिसने इससे विवाह कर लिया। उससे एक पुत्र मुहम्मद रहीम सुलतान हुआ। यह तुर्की भाषा में कविता भी करती थीं। फ़खी अमीरी की पुस्तक 'स्त्री-कवियों के जीवन-चरित्र' में भी इसका नाम आया है। हैदर लिखता है कि तारीखे-रशीदी के लिखे जाने के समय इसके और दो मुग़ल खानमों (दौलत और कुतलिक) के जिनका विवाह भी उसी समय बलात् हुआ था पुत्रगण जीवित और राज्य कर रहे थे।

(१) जब मिर्ज़ा कामराँ रोस्तक भागा तब रास्ते में उज़बेगों ने उसे लूट लिया। उसी हालत में वह ज़ुहाक और बामियान की ओर चला। हुमायूँ ने इसका पता पाकर कुछ सेना वहाँ भेजी। क़राचः खाँ, क़ासिम हुसेन सुलतान आदि ने उससे कहलाया कि आप ज़ुहाक और बामियान जायँ और हम लोग युद्ध के समय आपसे मिल जायँगे। हुमायूँ के साथ वहाँ पहुँचने पर वे उससे मिल गए। तब कामराँ ने बादशाह से युद्ध किया। (तबक़ाते-अकबरी)

(२) क़राचः खाँ की राय से अपने धायभाई हाजी मुहम्मद को कुछ सेना सहित सर्तान दर्रे पर अधिकार करने को भेजकर और स्वयं क़िबचाक़ दर्रे को पार कर हुमायूँ घाटी में उतरे। मिर्ज़ा कामराँ के आने का समाचार सुनकर वे दर्रे में घुसे। यहाँ से उनके सर्दार भागे और हुमायूँ परास्त हुए। (जौहर)

अंधे नीच अत्याचारी अभागे दुष्ट[1] ने बादशाह को चोट पहुँचाई जिसने उनके सिर तक पहुँचकर उनके मस्तक और आँखों को रक्त से भर दिया।

जिस प्रकार मुग़ल-युद्ध में बाबर बादशाह के सिर पर एक मुग़ल ने चोट पहुँचाई थी जिससे लंबी टोपी और पगड़ी तो नहीं कटी पर उनका सिर चोटैल होगया था[2]। वैसीही इन पर भी बीती। हुमायूँ बादशाह सर्वदा आश्चर्य किया करते और कहा करते थे कि कैसा सिर है कि टोपी और पगड़ी न कटी हो और उस पर चोट पहुँच जावे।

बादशाह क़िबचाक़ के पराजय के अनंतर बदख़्शाँ गए और मिर्ज़ा हिंदाल, मिर्ज़ा सुलेमान और मिर्ज़ा इब्राहीम सेवा में आए। बादशाह काबुल गए और मिर्ज़े भी एकमत होकर और एक हृदय[3] होकर साथ गए। मिर्ज़ा कामराँ भी

---

(१) अबुलफ़ज़ल लिखता है कि बाबा बेग कोलाबी ने जान या अनजान में तलवार मारी जिसपर बादशाह के मुड़कर देखने से वह घबड़ा गया।

(२) 'ताम्बोल ने मेरे सिर पर भारी तलवार से चोट दी। आश्चर्य की बात है कि यद्यपि मेरे ख़ूद अर्थात् लोहे की टोपी पर चोट भी नहीं आई पर मेरा सिर बहुत चोटैल हो गया था'। बाबर का आत्मचरित्र पृ० २६६, १११।

(३) जाने के पहले हुमायूँ ने सब सर्दारों को एकत्र करके अधीनता की शपथ खाने को कहा जिस पर हाजी मुहम्मद कोका ने प्रस्ताव किया कि इसमें बादशाह भी सम्मिलित हों। अंत में सब ने शपथ खाई और बादशाह ने उस दिन व्रत कर उस घटना की महत्ता और भी बढ़ा दी। (जौहर)

चले[१]। बादशाह ने हरम बेगम से कहलाया कि भयत्रो से कहो कि बहुत जल्दी बदख़्शाँ की सेना सुसज्जित करके भेज दें। बेगम ने थोड़े ही दिनों में कई सहस्र मनुष्यों को घोड़े, शस्त्र और सामान आदि देकर तथा स्वयं दर्रे तक साथ आकर सेना को आगे भेज दिया। वे स्वयं लौट गईं और सेना पहुँचकर बादशाह से मिल गई।

चारकाराँ या क़रा बाग़[२] में मिर्ज़ा कामराँ से युद्ध हुआ जिसमें शाही सेना ने बलवती हो विजय प्राप्त की[३] और मिर्ज़ा कामराँ को परास्त किया। मिर्ज़ा कामराँ भागकर दर्रों और लग़मानात[४] को चला गया।

---

(१) मिर्ज़ा कामराँ ने बादशाह का जब्बा अर्थात् मोटे कपड़े का अंगा दिखलाकर उनकी मृत्यु की सूचना दी जिससे उनका काबुल पर अधिकार हो गया था। वहीं से वे युद्धार्थ चले थे। (जौहर)

(२) काबुल के उत्तर ग़ोरबंद घाटी के मुहाने पर है।

(३) हुमायूँ ने युद्ध के पहले मिर्ज़ा कामराँ को समझाने के लिये शाह सुलतान को भेजा और कहलाया कि काबुल इस योग्य नहीं है कि उसके लिये युद्ध किया जाय। हम लोगों को चाहिए कि अपने परिवारों को दुर्ग में छोड़कर और मिलकर लग़मानात होते हुए भारत पर चढ़ाई करें। कामराँ ने यह मान लिया था पर क़राचः ख़ाँ ने इस प्रस्ताव का विरोध कर नहीं मानने दिया। (जौहर)

(४) निज़ामुद्दीन अहमद मनद्र द नाम लिखता है और अर्सकिन के 'बाबर और हुमायूँ' की जिल्द २ पृ० २६३ में लिखा है कि कामराँ बादबज दर्रे से अफ़ग़ान प्रांत को गया। काबुल और खैबर दर्रे के बीच में ये सभी स्थान हैं। यहीं के अफ़ग़ानों की शरण में कामराँ ठहरा था।

मिर्ज़ा कामराँ के दामाद आक़ सुलतान ने कहा कि तुम सर्वदा हुमायूँ बादशाह से शत्रुता रखते हो इसका क्या अर्थ है ? यह ठीक नहीं है। बादशाह की सेवा करो और आज्ञा मानो या मुझे छुट्टी दो कि लोग हम लोगों को पहिचान लें। मिर्ज़ा कामराँ ने आक़ सुलतान पर बिगड़कर कहा कि क्या मेरी अवस्था यहाँ तक पहुँच गई है कि तू मुझे समझावे। आक़ सुलतान ने भी बिगड़कर कहा कि यदि हम तुम्हारे साथ रहें तो हमारी सेवा हराम हो। आक़ सुलतान उसी समय अपनी स्त्री को साथ ले अलग होकर बक्खर को चला गया। मिर्ज़ा कामराँ ने शाह हुसेन मिर्ज़ा को पत्र[1] भेजा कि आक़ सुलतान मुझको क्रोधित करके गया है, यदि वहाँ जावे तो उसे स्त्री सहित जाने मत देना और उसकी स्त्री को उससे अलग करके उसको कह देना कि जहाँ इच्छा हो वहाँ जावे। इस पत्र के पहुँचते ही शाह हुसेन मिर्ज़ा ने हबीबा बेगम को आक़ सुलतान से अलग कर उसको मक्का बिदा कर दिया।

चारकाराँ के युद्ध में क़राचः खाँ आदि मिर्ज़ा कामराँ के कई प्रसिद्ध मनुष्य मारे गए थे[2]।

---

(१) शाह हुसेन मिर्ज़ा अ़र्गून का दामाद होने के कारण मिर्ज़ा कामराँ आक़ सुलतान के साथ इस प्रकार का कड़ा बर्त्ताव कर सका था।

(२) निज़ामुद्दीन अहमद लिखता है कि क़राचः खाँ पकड़ा गया और जब बादशाह के सामने लाया जा रहा था तब क़ंबर अली पहाड़ी ने जिसके भाई को इसने कंधार में मारा था इसे मार डाला। मिर्ज़ा अस्करी जो पकड़ा गया था ख़्वाजः जलालुद्दीन महमूद की रक्षा में मिर्ज़ा सुलेमान

आयशा सुलतान बेगम और दौलतबख़्त आग़ाच: भागकर कंधार जाती थीं कि हिमार दर्रे में शाही मनुष्यों ने उन्हें पकड़ा और ले आए। मिर्ज़ा कामराँ अफ़ग़ानों[1] में जाकर उन्हीं के साथ रहने लगे।

बादशाह कभी कभी नारंगी बाग देखने जाया करते थे, उस वर्ष भी पुरानी चाल पर दर्रों में नारंगी देखने गए और मिर्ज़ा हिंदाल भी साथ थे। बेगमों में बेगा बेगम, हमीद: बानू बेगम माहचूचक बेगम आदि साथ थीं पर मैं इस कारण साथ नहीं जा सकी कि उन दिनों मेरा पुत्र सआदतयार खाँ माँदा था। एक दिन दर्रों के पास बादशाह अहेर खेल रहे थे और मिर्ज़ा हिंदाल साथ में थे। अहेर अच्छा हुआ। मिर्ज़ा जिधर अहेर खेल रहे थे उसी ओर बादशाह भी गए। मिर्ज़ा ने बहुत अहेर किया था। चंगेज़ खाँ की प्रथा के अनुसार उन्होंने बादशाह को सब भेंट कर दिया। चंगेज़ खाँ की नीति में यह एक नियम है कि छोटे अपने बड़ों से इसी प्रकार का व्यवहार करते हैं। बादशाह

के यहाँ भेजा गया जिसने उसे बल्ख़ पहुँचाया। वहाँ से मक्का जाते समय रास्ते में (दमिश्क़ और मक्का के बीच सन् ११५८ ई० में) मर गया।

जौहर लिखता है कि क़राच: खाँ युद्ध में गोली खाकर गिरा था और मरने पर उसका सिर काट लिया गया था।

(1) माहमंद के अफ़ग़ान, दाऊदज़ई खेल और लग़मानात के अफ़ग़ानों से तात्पर्य है। जब हुमायूँ उधर गया तब इन्हीं अफ़ग़ानों की राय से कामराँ सिंध गया।

को सब भेंट कर देने पर मिर्ज़ा के ध्यान में आया कि बहिनों का भी भाग चाहिए जिसमें वे उलाहना नहीं दें। इस लिये एक बार और अहेर खेलकर हम बहिनों के लिये ले चलें। मिर्ज़ा फिर खेलने लगे और घोड़ा खेलकर लौटे आ रहे थे कि मिर्ज़ा कामराँ के नियुक्त किए हुए एक मनुष्य ने रास्ता रोककर मिर्ज़ा पर अनजान में एक तीर चलाया जो उनके कंधे पर लगा। यह विचार कर कि मेरी बहिनें और स्त्रियाँ यह सुनकर घबड़ाएँगी उसी समय उन्होंने उन्हें लिख भेजा कि आपत्ति आगई थी पर कुछ टल गई और तुम लोग धैर्य रखना, हम कुशल से हैं। मौसिम के गरम होजाने से बादशाह काबुल लौट आए और एक वर्ष में तीर का घाव भी अच्छा हो गया।

एक वर्ष के अनंतर समाचार मिला कि मिर्ज़ा कामराँ युद्ध की इच्छा से फिर सेना एकत्र कर रहे हैं[1]? बादशाह भी युद्ध का सामान ठीक कर के मिर्ज़ा हिंदाल को साथ ले दर्रों की ओर चले। जिस समय दर्रों तक पहुँचकर वे वहाँ उतरे,

(१) निज़ामुद्दीन अहमद लिखता है कि अफ़ग़ानों ने जिनके यहाँ मिर्ज़ा कामराँ थे सेना बटोरना आरंभ किया। इस समाचार को सुनकर बादशाह उधर गए।

जौहर अफ़ग़ान सर्दार का नाम मुहम्मद ख़लील बतलाता है। अबुलफ़ज़ल लिखता है कि रवानः होने के पहले हुमायूँ ने हाजी मुहम्मद खाँ कूकी और उसके भाई के बहुत कसूरों का न्याय कर के उन्हें प्राण-दंड दिया था।

उस समय जासूस लोगों ने जो हर घड़ी समाचार ला रहे थे पता दिया कि मिर्ज़ा कामराँ ने उसी रात को आक्रमण करने का निश्चय किया है। मिर्ज़ा हिंदाल ने आकर बादशाह से कहा और सम्मति दी कि आप इसी उँचाई[1] पर रहें और भाई (भतीजे) जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर बादशाह को साथ ही रखें जिसमें इस उँचाई का पूरा पहरा दिया जाय। स्वयं अपने सैनिकों को बुलाकर अलग अलग उत्साह और धैर्य दिलाते हुए मिर्ज़ा ने कहा कि सब सेवा एक ओर और आज की रात की सेवा एक ओर है और ईश्वर की कृपा से जो तुम लोगों की इच्छाएँ होंगी वह सब पूर्ण की जायँगी। उन लोगों को स्थान स्थान पर खड़ा करके उन्होंने अपने लिए कवच, टोपी और शिरस्त्राण माँगा।

तोशकची गठरी उठाता ही था कि किसी ने छींक[2] मार दी जिससे उसने थोड़ी देर के लिये उसे रख दिया। देरी होने से मिर्ज़ा ने एक मनुष्य को जल्दी करने के लिये भेजा। जब वह जल्दी करके उसे लिवा लाया तब उन्होंने स्वयं पूछा कि क्यों देर की? उसने प्रार्थना की कि गठरी को उठा रहा था कि किसी ने छींक मार दी। इस लिये उसे फिर रख दिया, इसी कारण देर होगई। (मिर्ज़ा ने) कहा कि ठीक नहीं किया। तुम्हें कहना चाहिए था

---

(१) तुमान के गाँव चारयार में यह उँचाई थी जिसके चारों ओर मोर्चे लगाए गए थे।

(२) एक छींक को बहुत जाति अशुभ-सूचक मानती हैं इससे किसी काम के आरंभ में छींक हो तो उसे कुछ देर के लिये रोककर फिर से आरंभ करते हैं।

कि ईश्वरेच्छा से बीरगति प्राप्त हो। फिर कहा कि मित्रो साक्षी रहो कि हम बुरी वस्तुओं और कुकार्यों से दूर रहते हैं। लोगों ने फ़ातिहा पढ़ा और धन्यवाद दिया। मिर्ज़ा ने आज्ञा दी कि कवच अस्त्र ले आओ। उसे पहिरकर उन्होंने खाँई के आगे जाकर सैनिकों को उत्साह और बढ़ावा दिया। इसी समय मिर्ज़ा हिंदाल के तबक़ूची[1] ने उनका शब्द सुनकर दोहाई दी कि मुझको तलवार से मार रहे हैं। मिर्ज़ा ने सुनते ही घोड़े से उतर-कर कहा कि मित्रो ! वीरता से यह दूर है कि हमारा तबक़ूची मारा जाय और हम सहायता न करें। वे स्वयं खाईं में उतरे पर कोई सैनिक घोड़े से नहीं उतरा। मिर्ज़ा दोबार खाईं से निकले और आक्रमण किया पर इसीमें वे मारे गए[2]।

नहीं जानती कि वह कैसा निष्ठुर अत्याचारी[3] था जिसने इस सहृदय युवक को कठोर तलवार से प्राणहीन किया।

---

(१) उन बर्त्तनों का मुंशी जो धातु और काम के कारण बहुमूल्य होते हैं।

(२) २१ ज़ीक़दः ९५८ हि० (२० नवंबर सन् १५५१ ई०) को शनिवार की रात में मिर्ज़ा कामराँ ने पठानों के साथ धावा किया। इसी रात को हिंदाल मारे गए। ४ मार्च सन् १५१९ ई० को इनका जन्म हुआ था और मृत्यु के समय वह तेंतीस वर्ष के थे। गुलबदन बेगम ने सर्वदा अपने भाई की बात स्नेह के साथ लिखी है और मालूम होता है कि उसका शोक बहुत वर्षों तक बना रहा। बेगम की पुस्तक में स्नेही स्त्री पुरुषों के अच्छे चित्र दिए हुए हैं।

(३) मिर्ज़ा ने एक पठान को गिराया था जिसके जरिंदा नामक भाई ने विष से बुझी हुई तीर मारकर हिंदाल को मारडाला।—अबुलफ़ज़्ल।

अच्छा होता यदि वह निष्ठुर तलवार मेरे या मेरे पुत्र सआदत-यार के या खिज्र ख्वाजा खाँ के हृदय या आँखों तक पहुँचती। आह! शत शोक! दुःख! सहस्र दुःख!

शैर

शोक! शोक! शोक!

कि मेरा सूर्य बादल में छिप गया।

अर्थात् मिर्ज़ा हिंदाल ने बादशाह के सेवा और कार्य में प्राण दिया। मीर बाबा दोस्त ने मिर्ज़ा को उठा लिया और वह उन्हें उनके गृह पर ले गया। किसी से कुछ न कहकर द्वार पर दरबान बैठाकर कहा कि जो कोई आकर पूछे उससे कहना कि घाव गहरा लगा है और बादशाह की आज्ञा है कि कोई भीतर न जाय।

तब उसने बादशाह के पास जाकर कहा कि मिर्ज़ा घायल हो गए हैं। बादशाह ने घोड़ा मँगवाया कि जाकर मिर्ज़ा को देखें। मीर अब्दुल हई ने कहा कि घाव गहरा लगा है आपको जाना उचित नहीं है। बादशाह समझ गए और अपने को शांत रखना चाहा पर न रख सके और घबड़ा गए[1]।

जूसाही[2] खिज्र ख्वाजः खाँ की जागीर थी। बादशाह ने

(१) बायज़ीद लिखता है कि मुनइम खाँ के यह कहने पर कि मिर्ज़ा हिंदाल मरा तो हुज़ूर का एक शत्रु कम हुआ और हुज़ूर अपने लाभ होने पर क्यों रोते हैं, वे चुप हो गए।

(२) वर्तमान समय का जलालाबाद जो काबुल के रास्ते पर है।

उसे बुलाकर कहा कि मिर्ज़ा हिंदाल को जूसाही में लेजाकर रक्षा में रखो। ख़ाँ ऊँट[1] की नकेल पकड़कर रोते गाते चले। बादशाह ने यह समाचार सुनकर खिज़्र ख़्वाज: ख़ाँ से कहला भेजा कि धैर्य रखना चाहिए। मेरा हृदय तुमसे अधिक दग्ध होरहा है पर ऐसे रक्तपिपासु अत्याचारी शत्रु के सामने घबड़ाना ठीक नहीं। उसके पास रहते संतोष के सिवा कोई दूसरा उपाय नहीं है। बहुत दुःख और शोक के साथ लेजाकर ख़ाँ जूसाही में उसे रक्षापूर्वक छोड़ आए[2]।

भ्रातृघातक, अत्याचारी, बेगानों का मित्र और निष्ठुर मिर्ज़ा कामराँ यदि उस रात को नहीं आता तो यह बला आकाश से न गिरती। बादशाह ने काबुल पत्र भेजे जिनके पहुँचते ही बहिनों के लिये कुल काबुल मानों शोक का घर होगया और अच्छे शहीद मिर्ज़ा की मृत्यु पर द्वार और दीवाल रोते चिल्लाते थे। गुलचेहर: बेगम क़रा ख़ाँ के घर गई थीं। जब वह लौटकर आईं तब प्रलय मच गया और बहुत रोने और शोक करने से वे माँदी और पागल सी हो गईं।

मिर्ज़ा कामराँ की वीरता से मिर्ज़ा हिंदाल की मृत्यु हुई। उस दिन से फिर नहीं सुना गया कि मिर्ज़ा कामराँ को अपने काम में सफलता हुई हो और दिन पर दिन घटती होते हुए

---

(१) जिस पर मिर्ज़ा हिंदाल का शव लदा हुआ था।

(२) फिर काबुल ले जाकर बाबर बादशाह के मक़बरे में गाड़ा गया था।

वह नष्ट होगया। इस प्रकार बुराई की कि भाग्य ने फिर साथ नहीं दिया और वे सफलप्रयत्न नहीं हुए। मानों मिर्ज़ा हिंदाल मिर्ज़ा कामराँ के जीवन क्या उसकी आँखों का तेज था कि उस पराजय[1] के अनंतर भागकर वह सीधे शेर खाँ के पुत्र सलीम शाह के यहाँ चला गया[2]। उसने एक सहस्र रुपया दिया तब उसी समय मिर्ज़ा कामराँ ने वृत्तांत कहकर सहायता माँगी। सलीम शाह ने प्रकट में कुछ उत्तर नहीं दिया पर पीछे से कहा था कि जिसने अपने भाई मिर्ज़ा हिंदाल को मारा है उसकी किस प्रकार सहायता करूँ। ऐसे मनुष्य को तो नष्ट करना उचित है। मिर्ज़ा कामराँ ने सलीम खाँ की इस सम्मति को सुनकर अपने मनुष्यों से भी सम्मति नहीं ली और रात्रि को ही भागना निश्चित करके वह चल दिया। मिर्ज़ा

(१) चंद्रमा के निकल आने पर अफ़गान युद्ध में नहीं ठहर सके और भाग गए।

(२) जब मिर्ज़ा ने दर्बार में जाकर कोर्निश की तब उसके सैनिकों ने पकड़कर कहा कि मिर्ज़ा हाज़िर है। सलीम या इसलाम शाह ने कुछ देर तक ध्यान नहीं दिया और फिर स्वागत करके अपने ख़ेमे के पास ख़ेमा दिया। जब वह दर्बार में जाता अफ़गान अमीर हँसी में 'मोरो आता है' कहते थे। एक दिन एक अनुचर से मिर्ज़ा ने इसका अर्थ पूछा जिसने कहा कि 'मोरो' बड़े सर्दार को कहते हैं इसपर मिर्ज़ा ने कहा कि इसलाम शाह बड़ा मोरो है और शेरशाह उससे बड़ा मोरो था। इसने एक कड़ा शैर भी कहा था जिसपर वह नज़र क़ैद हुआ। (अब्दुल् क़ादिर बदायूनी)

के मनुष्यों को पता भी नहीं मिला जिससे वे रह गए। समाचार मिलते ही बहुतों को सलीम शाह ने कारागार में भेज दिया।

मिर्ज़ा कामराँ भीरा और खुशआब तक गया था कि वहाँ सीमा पर आदम गक्खर ने सैकड़ों बहाने कर उसे पकड़ लिया और बादशाह के पास लेगया[1]।

अंत में सब एकत्र हुए। ख़ानों, सुलतानों, भद्र पुरुषों, बड़े सैनिकों और प्रजा आदि ने जो मिर्ज़ा कामराँ से कष्ट पा चुके थे एकमत होकर बादशाह से प्रार्थना की कि बादशाही और राजत्व में भ्रातृत्व का नियम नहीं पालन किया जा सकता। यदि भाई का मुख देखिए तो बादशाही छोड़िए और यदि बादशाही की इच्छा हो तो भाईपन छोड़िए। यह वही मिर्ज़ा कामराँ है कि जिसके कारण क़िबचाक़ घाटी में आपके सिर में कैसी चोट पहुँची थी? अफ़ग़ानों से बहाने से मिलकर मिर्ज़ा हिंदाल को (इसीने) मरवा डाला था। बहुत से चग़त्ताई मिर्ज़ा के कारण नष्ट होगए और कितनों के परिवार कैद हुए

(१) मिर्ज़ा कामराँ एक ज़मींदार को मिलाकर चद्दर ओढ़कर निकल भागा और सुलतान आदम गक्खर के यहाँ सुलतानपुर में जो रोहतास से तीन कोस पर है शरण गया और उसने दम दिलासा देकर उसे कैद कर लिया और नहीं मारने का वचन लेकर हुमायूँ को दे दिया। (मुंतख़ाबुत्तवारीख़)

तथा अपमानित हुए। फिर असंभव नहीं कि हमलोगों के स्त्री और बच्चे कारागार के कष्ट और दुख न उठावें। जहन्नुम में जायँ, (यदि हम अपने को निछावर न करें) आपके एक बाल पर हमलोगों के प्राण, धन और परिवार निछावर हैं, पर यह भाई नहीं है आपका शत्रु है।

अंत में सबने एकमत होकर कहा कि—देशद्रोही का सिर नीचा करना अच्छा है।

बादशाह ने उत्तर दिया कि यद्यपि तुम लोगों की ये बातें हमारे विचार में आती हैं पर मेरा मन नहीं मानता। सब ने दोहाई दी और कहा कि जो कुछ हम लोगों ने प्रार्थना की है वही नीतियुक्त है[1]। अंत में बादशाह ने आज्ञा दी कि यदि तुम लोगों की इसी में सम्मति और भलाई है तो एकत्र हो कर लिखकर हस्ताक्षर करो। दाहिने और बाएँ के सभी सर्दारों ने एकत्र हो यही मिसरा लिखकर दिया कि 'देशद्रोही का सिर नीचा करना अच्छा है' बादशाह को भी मानना पड़ा।

रोहतास के पास पहुँचने पर बादशाह ने सय्यद मुहम्मद

(१) जौहर ने चग़त्ताई सर्दारों के इस प्रार्थना पर हठ का ज़िक्र नहीं किया है पर निज़ामुद्दीन अहमद और अबुलफ़ज़्ल दोनों इस बात का समर्थन करते हैं।

को आज्ञा दी कि मिर्ज़ा कामराँ की दोनों आँखें अंधी कर दो[१]।
उसी समय वह अंधा कर दिया गया।

बादशाह अंधा करने के अनंतर[२].......

समाप्त।

---

(१) अली दोस्त बार बेगी, सय्यद मुहम्मद बिकना, गु़लामअली शशअंगुश्त (छांगुर) और जौहर आफ़ताबची सब थे पर नश्तर गु़लामअली ने चलाया था। चार वर्ष बाद ५ अक्तूबर सन् १५५७ ई० को मक्के में कामराँ की मृत्यु हुई।

(२) इसके आगे के पृष्ठ प्राप्त नहीं हैं।

अनुक्रमणिका

फ

ब

भ

म

शुद्धिपत्र

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
३	११	वेगम	वेगम[1]
६	१६	सैयद	सईद
९	१०	गोरगाँ	कोरगाँ
१६	१२	अफ़गान	अफ़गानी
२९	१०	मादिउल्अव्वल	जमादिउल्अव्वल
३०	१०	नौ	नौ[1]
३८	६	सुलतानों	सुलतानों[1]
४४	१८	वेगचिक	बेगचिक
४५	२२	यशफ़	यराक़
४६	१७	गद्दी को	को गद्दी
४६	२२	जाता	जाती
४८	१२	आज़म	आजम
५२	१८	दादी	नानी
६५	९	सुलतान	सुलतानम
७३	४-१०	जिन्नताबाद	जन्नताबाद
७४	१	अमीरों	अमीरों[3]
८०	२२	एकत्रत	एकत्र

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
८४	११	हुई[१]	हुई[३]
८४	१३	ईसनदौलात्	यासीनदौलात्
८६	८	के	को
८८	१३	मुज्ज़अम	मुअज्ज़म
८९	१४	आने की	की
९१	२३	शरफद्दीन	शर.फुद्दीन
९२	१	ख़्वाजा	ख़्वाजा
,,	११	हुए,	हुए[३]
,,	२१	मुवैयदा	मुवैयद
,,	२३	बढ़ें	बढ़ेंगे
९९	१४	करचा ख़ाँ	कराचाख़ाँ
११७	२१	अब्दुल-	अब्दुल्-
११८	६	समान	समान[१]
११९	२	ग़ाज़ी	ग़ाज़ी[२]
१२०	७	शाल मस्तान	शालमस्तान[१]
,,	१०	जवान	जवान[२]
१२६	१८	हेलमंद	हलमंद
१४६	१६	मुनइसख़ाँ	मुनइमख़ाँ
१५३	८	सुलतान	जहाँ सुलतान
१६०	२२	रहे	रहे जि[illegible]के बाद
१७४	२१	मनद्रद	मनद्रद